नमो हितोपदेशाय ।

# बुधजन-सतसई

अर्थात्

## कविवर बुधजनजीके बनाये हुए
## ७०० दोहोंका संग्रह ।

संशोधक

पं० नाथूरामजी प्रेमी ।

प्रकाशक—

जैन-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय

हीराबाग, बम्बई ।

तृतीयावृत्ति ] [ मूल्य सात आने ।

प्रकाशक
छगनमल बाकलीवाल
मालिक
जैन-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय
हीराबाग, बम्बई न० ४

मुद्रक
ज्योतीप्रसाद गुप्त
महावीर प्रेस, किनारीबाजार
आगरा।

जयपुर निवासी

## कविवर श्रीभदीचन्द्रजी (बुधजनजी) का

# संक्षिप्त परिचय

जैन-साहित्यके इतिहासमें जितना गौरव जयपुर (जैनपुर) नगरको प्राप्त है, उतना शायद ही किसी अन्य नगरको हो। जयपुर राज्यका इतिहास इस बातका साक्षी है।

मोक्षमार्गप्रकाशकके रचयिता विद्वद्वर्य पं० टोडरमलजी तथा न्याय और सिद्धांतके विद्वान् पं० जयचन्द्रजीको कौन नहीं जानता? ये दोनों महापुरुष भी इसी नगरके निधि थे। परन्तु शोकका विषय है, कि आज उन उद्भट विद्वानोंका देश तथा धर्मकी बलि-वेदीपर हँसते हँसते प्राण दे देनेवाले सैकड़ों जैन वीरोंका नाम लुप्तप्राय हो रहा है। सचमुच यह साहित्यिक ह्रास एक स्वाभिमानी जैनीके लिए वज्रा-घातसे भी अधिक दुःखप्रद है। समाज और साहित्य-का कितना घनिष्ट सम्बन्ध है, इसे कौन नहीं जानता, जिस समाजका साहित्य नष्ट हो चुका है उस समाजका अन्त भी निकट ही समझिये।

जैन-साहित्यकी दयनीय दशाको देखकर वयोवृद्ध मास्टर मोतीलालजी संघी, प्रबन्धक श्रीसन्मति पुस्तकालय जयपुरसे न रहा गया। आपने जयपुरीय जैनविद्वानों तथा कवियोंकी कृतियोंका उद्धार करनेका संकल्प किया, उसीके फल स्वरूप आप अनेक कष्टोंको सहते हुए खोजका काम कर रहे हैं, इस खोजके सम्बन्धमें कई जैनपत्रोंमें लेख निकल चुके हैं। आज हम सतसईके पाठकोंके समक्ष उसके रचयिता कविवर श्रीभदीचन्द्रजी वजकी पवित्र जीवनी रखते हैं। यह हमें मास्टर सा० की कृपा से प्राप्त हुई है, इस कृपाके लिये हम उनके अत्यन्त कृतज्ञ हैं। हमारी हार्दिक भावना है, कि मास्टर साहेब को इस कार्यमें दिन दूनी रात चौगुनी सफलता प्राप्त हो, हर एक जैनी का कर्त्तव्य है कि वह मास्टर साहेब को इस कार्य में यथाशक्ति सहायता दे।

# कवि-परिचय ।

## वंशवृक्ष ।

कविवर भदीचन्द्रजी जयपुर निवासी श्री निहालचन्दजीके तीसरे पुत्र थे। आपका गोत्र वज था। जाति आपकी खण्डेलवाल थी। निम्नस्थ वंश-वृक्षसे आपके वंशका भली भांति परिचय मिलता है:—

* शोभाचन्द्रजी
|
पूरणमलजी †
|
(१) निहालचन्द्रजी (२) जादुदासजी
|
(१) गुलाबचन्द्रजी, (२) अमीचन्द्रजी, (३) भदीचन्द्रजी, (४) श्योजीरामजी, (५) गुमानीरामजी, (६) भगतरामजी,
|
अमरचन्द्रजी
|
मोतालालजी
|
सोनजी
|
फूलचन्द्रजी

* श्रीशोभाचन्द्रजीकी जन्मभूमि आमेर थी। आप वहाँ बहुत समय तक रहे थे। परन्तु अब वहाँ निर्वाह नहीं हुआ, तब आप सांगानेर ( जयपुर राज्यान्तर्गत एक नगर ) चले गये।

† श्रीपूरणमलजी पूर्वमें सांगानेरमें रहते थे, परन्तु अपने निर्वाहके लिये आपको भी जयपुर जाना पड़ा था।

अभी तक आपके जन्मका समय तथा बाल्यकालका हाल प्राप्त नहीं हुआ है, केवल इतना पता लग पाया है, कि आपने विद्याध्ययन पं० मांगीलालजीके पास किया था। जो टिक्कीवालोंके रास्तेमें रहते थे। जैनधर्मके प्रति बाल्यकालसे ही आपकी भक्ति थी। आप श्रावकके षटावश्यकोंको यथाशक्ति पालते थे। आप दीवान अमरचन्द्रजीके मुख्य मुनीम थे। दीवानजी आपके कार्यसे सदैव सन्तुष्ट रहते थे, और आपपर पूर्ण विश्वास रखते थे। वे जो कुछ नवीन कार्य करते उसमें आपसे अवश्य सलाह ले लेते थे। दीवानजी प्रायः अपने खास काम इनकी अध्यक्षतामें ही कराते थे। एक वार दीवानजीने एक जैनमन्दिर बनवानेके लिये कहा तो आपने आज्ञा पाते ही एक की जगह दो मन्दिर बनवाना आरम्भ कर दिया। हमारे चरित-नायककी यह हार्दिक इच्छा थी, कि इन दोनों मन्दिरों-पर दीवानजीका ही नाम रहे। इनको दो मन्दिर बनवाते देख कई लोगोंने दीवानजीसे कविवरके विरुद्ध चुगली खाई और कहा कि देखिये, आपका गुमास्ता कैसा नीच कार्य कर रहा है। आपने तो उसको एक मन्दिर बनवानेका हुक्म दिया था, लेकिन वह दो बनवा रहा है, और दूसरे मन्दिरके लिये वह

आपके मन्दिरका मसाला चुरवा २ कर मँगाता है। इससे मालूम होता है, कि उसकी नीयत खराब है। ऐसे व्यक्तिको आप नौकर न रखिये। दीवानजीने उसकी बातें सुनकर कहा कि भदीचन्द्रजी मकान वगैरह अपने निर्वाहार्थ तो बनाते ही नहीं है। वे तो भव्य-जीवोंके कल्याणार्थ जिनालय बनवाते हैं। अच्छा है, उन्हें जैसा चाहे वैसा करने दो। उसके बाद एक दिन जब उनकी शिकायत करनेवाले मन्दिरजी-के पास खड़े हुए थे दीवानजी वहाँ जा पहुँचे और कहने लगे, भदीचन्द्रजी, दूसरे मन्दिरमें भी आप जी खोल कर काम करवाइये। किसी प्रकारकी कमी न रहने दें, दीवानजीकी यह बात सुनकर चुगलखोरों-का चेहरा उतर गया। मन्दिरोंके बन चुकनेपर भदीचन्द्रजीने उनमें भगवानकी प्रतिमाओंके स्थापन-का विचार किया। आपने शिलावटोंके पास ६ माह तक बैठकर शास्त्रानुकूल बड़ी ही मनोज्ञ प्रतिमाएं बनवाई।

*इन दोनों मन्दिरोंका पंचकल्याणक महोत्सव

* दीवानजीके मन्दिरमें श्री मूलनायककी प्रतिमा चँवरीमें विराजमान है तथा श्रीभदीचन्द्रजीके जिनालय में श्रीमूलनायक श्री १००८ श्रीचन्द्रप्रभ भगवानकी

बड़ी धूमधामके साथ हुआ, सब काम समाप्त हो जानेपर यह प्रश्न उपस्थित हुआ कि दूसरा मन्दिर किसके नामसे प्रख्यात हो। ※दीवानजी उसपर कविवरका नाम लिखवाना चाहते थे, परन्तु उनका कहना था, कि मेरा इसपर कुछ भी अधिकार नहीं है। दीवानजीका ही नाम लिखा जाना चाहिये। परन्तु दीवानजीने भदीचन्द्रजीका नाम ही खुदवाया, और इस ही नामसे इस मन्दिरको विख्यात किया।

हमारे चरित्रनायक उच्चकोटिके पंडित थे, आपकी शास्त्र बाँचने तथा शंका समाधान करनेकी शैली बहुत ही श्रेष्ठ तथा रुचिकर थी। आपकी शास्त्रसभामें अन्यमतावलम्वी भी आते थे। आप उनकी शंकाओंका निवारण बड़ी खूबीके साथ करते थे।

---

प्रतिमा सफेद संगमरमरके बने हुए समोशरण में सुशोभित हैं। आपके मन्दिरजीकी विम्वप्रतिष्ठा सं० १८६४ में हुई थी। आपने अपने मन्दिरजीकी दीवार पर यह उपदेश खुदवाया था "समय पाय चेत भाई—( २ ) मोह तोड़ विषय छोड़—( ३ ) भोग घटा।"

---

※ इन दोनों मन्दिरोंमें गुमानपंथाम्नाय है। दीवानजी तथा कविवर भदीचन्द्रजी गुमानपंथाम्नायी थे, दीवानजीका मन्दिर जयपुरमें छोटे दीवानजीके मन्दिर के नाम से प्रसिद्ध है।

आप उच्च कोटिके कवि भी थे। आपकी कविता-का विषय भव्य प्राणियोंको जैनधर्मके सिद्धान्त समझाना तथा प्रवृत्ति-मार्गसे हटा कर निवृत्ति-मार्ग में लगाना था।

आपके बनाये हुए चार ग्रंथ प्रसिद्ध हैं, और वे चारों ही छन्दोबद्ध हैं। १ तत्त्वार्थबोध, २ बुधजनसतसई, ३ पंचास्तिकाय, ४ बुधजनविलास। ये चारों ग्रंथ क्रमसे विक्रम संवत् १८७१-७९-९१-९२ में बनाये गये हैं। नं० २ का ग्रन्थ आपके हाथमें है। बुधजन-विलास बहुत बड़ा ग्रंथ है, जिसका बहु भाग जैनपद-संग्रह पाँचवां भाग (२३३ पद) इष्टछत्तीसी छहढाला वगैरः जैन-ग्रंथ-रत्नाकर कार्यालय द्वारा प्रकाशित हो चुके हैं।

हम सहृदय पाठकोंके अवलोकनार्थ कुछ दोहे उद्धृत करते हैं, पाठक स्वयं ही देख लेंगे कि ये दोहे वर्त्तमान समयमें प्रचलित वृन्द, रहीम, विहारी, तुलसी, कवीर आदि स्वनामधन्य कवियोंके दोहोंसे किसी भी अंशमें कम नहीं हैं:—

दुष्ट भलाई ना करे, किये कोटि उपकार।
सर्प न दूध पिलाइये, विष ही के दातार॥ (बुधजन)

मूरखको हितके वचन, सुनि उपजत है कोप।
साँपहि दूध पिलाइये, ज्यों केवल विष ओप॥
(वृन्द)

एक चरनहू नित पढ़ै, तो काटे अज्ञान ।
पनिहारीकी नेजसों, सहज कटे पाषाण ॥
(बुधजन)

करत करत अभ्यासके, जड़मति होत सुजान ।
रसरी आवत जाततें, सिल पर होत निशान ॥
(रहीम)

सीख सरलको दीजिये, विकट मिलें दुख होय ।
बया सीख कपिकों दई, दियो घोंसला खोय ॥
(बुधजन)

सीख वाहिको दीजिये, जाको सीख सुहाय ।
सीख न दीजे बाँदरा, बया घर बह जाय ॥

सींग पूंछ बिन बैल है, मानुष बिना विवेक ।
भख्य अभख समझे नहीं, भगिनी भामिनि एक ॥

मुखतें बोले मिष्ट जो, उरमैं राखै घात ।
मीत नहीं वह दुष्ट है, तुरत त्यागिये भ्रात ॥

जननी लोभ लबारकी, दारिद दादी जान ।
कूरा कलही कामिनी, जुआ विपतिकी खान ॥

स्यार, सिंह, राक्षस, अधम, तिनका भख है मांस ।
मोक्ष होन लायक मनुष, गहैं न याकी बास ॥

मदिरा पी मत्ता मलिन, लोटे बीच बजार ।
मुखमें मूतैं कूकरा, चाटैं बिना विचार ॥

द्विज खत्री कोली वनक, गनिका चाखत लाल[1]।
ताको सेवत मूढ़ जन, मानत जन्म निहाल ॥
जैसे अपने प्रान है, तैसे परके जान ।
कैसे हरते दुष्टजन, विना वैर पर प्रान ॥
चोरत डरत भोगत डरे, गरै कुगति दुःख घोर ।
लाभ लिख्यो सो ना टरै, मूरख क्यों है चोर ॥
अपनी पगतरा देखिकै, जैसा अपने दर्द ।
तैसे ही परनारिका, दुःखी होत है मर्द ॥

स्वयं कविजीने अपने ग्रन्थका सार निम्नस्थ पद्यमें दर्शाया है ।

भूख सहो दारिद्र सहो, सहो लोक अपकार ।
निंद काम तुम मति करो, यहै ग्रन्थको सार ॥

ग्रन्थ समाप्ति के समय-सम्बन्धमें आपने निम्न लिखित दोहा लिखा है ।

संवत ठारासै असी, एक वरसतें घाट ।
जेठ कृष्ण रवि अष्टमी, हूवै सतसई पाठ ॥

इनके पद भागचन्द, दौलत, भूधर, द्यानत, महाचन्द्र, जिनेश्वर आदि कवियोंके पदोंसे किसी भी बातमें कम

---

1 लार ।

नहीं हैं। पदोंकी भाषा बिलकुल जयपुरी नहीं है, पर कुछ पद आपने ठेठ जयपुरी भाषामें ही लिखे हैं। उनमेंसे कुछ पद हम पाठकोंके अवलोकनार्थ उद्धृत करते है।

चाल 'तिताला'

और ठौर क्यों हेरत प्यारा,
तेरे हि घटमें जाननहारा ॥ और ॥ टेक ॥
चलन हलन थल वास एकता,
जात्यान्तर तें न्यारा न्यारा ॥ और ॥ १ ॥
मोह उदय रागी द्वेषी ह्वै,
क्रोधादिकका सरजन हारा।
भ्रमत फिरत चारौं गति भीतर,
जनम मरन भोगत दुख भारा ॥ और ॥ २ ॥
गुरु उपदेश लखै पद आपा,
तबहिं विभाव करै परिहारा।
ह्वै एकाकी "बुधजन" निश्चय,
पावै शिवपुर सुखद अपारा ॥ और ॥ ३ ॥

राग 'पूरवी'

भजन बिन यौं ही जनम गमायो ॥ भजन० ॥ टेक ॥
पानी पैल्यां पाल न बांधी,
फिर पीछैं पछतायो ॥ भजन ॥ १ ॥
रामा-मोह भये दिन खोवत,
आशापाश बँधायो ।

याद् हियामैं नाम मुख, करौ निरन्तर वास ।
जौलौं वसवौ जगतमैं, भरवौ तनमैं साँस ॥९६॥
मैं अजान तुम गुन अनत, नाहीं आवै अंत ।
वंदत अंग नमाय वसु, जावजीव-परजंत ॥९७॥
हारि गये हौ नाथ तुम, अधम अनेक उधारि ।
धीरैं धीरैं सहजमैं, लीजै मोहि उधारि ॥९८॥
आप पिछान विसुद्ध ह्वै, आपा कह्यौ प्रकास ।
आप आपमैं थिर भये, वंदत बुधजन दास ॥९९॥
मन मूरति मंगल वसी, मुख मंगल तुम नाम ।
एही मंगल दीजिये, परयौ रहूं तुम धाम ॥१००॥

इति देवानुरागशतक ।

नमः सिद्धेभ्यः।

# बुधजन-सतसई।

## देवानुरागशतक

दोहा।

सन्मतिपद[1] सन्मतिकरन[2], वन्दौं मंगलकार।
बरनैं बुधजन सतसई, निजपरहितकरतार॥ १॥
परमधरमकरतार हौ, भविजनसुखकरतार।
नित बंदन करता रहूं, मेरा गहि कर तार॥ २॥
परे परारे आपके, पाप परारे दैन।
हरौ कर्मकौं मारकैं, करौ सदा तुम चैन॥ ३॥
सबलायक[3] ज्ञायक प्रभू, घायक कर्मकलेस।
लायक जानिरै[4] नमत हूं, पायक[5] भये सुरेस॥ ४॥

---

१ श्रीवर्धमान तीर्थंकरके चरण। २ सन्मति—अच्छी बुद्धि या सम्यग्ज्ञान करनेवाले। ३ सब तरह। ४ जानिरै—जान करके। ५ सेवक।

नमूं तोहि कर जोरिकै. सिव-वनरी कर जोरि।
वरजोरी विधिकी हरौ, दीजै यौ वरै जोरि ॥ ५ ॥
तीन कालकी खबरि तुम. तीन लोकके तात।
त्रिविधिसुद्ध वंदन करूं, त्रिविधि ताप मिटिजात ॥ ६ ॥
तीन लोकके पति प्रभू, परमातम परमेस।
मन-वच-तनतैं नमत हूँ, मेटौ कठिन कलेस ॥ ७ ॥
पूजूं तेरे पाँयकूं, परम पदारथ जान।
तुम पूजेतैं होत है. सेवक आप समान ॥ ८ ॥
तुम समान कोउ आन नहि, नमूं जाय कर नाय।
सुरपति नरपति नागपति, आय परैं तुम पाँय ॥ ९ ॥
तुम अनंतगुन मुखथकी, कैसैं गाये जात।
इंद मुनिंद फनिंद हू, गान करत थकि जात ॥ १० ॥
तुम अनंत महिमा अतुल, यौं मुख करहूं गान।
सागर जल पीत न बनैं, पीजे तृषा समान ॥ ११ ॥
कह्या विना कैसे रहूं, मौसॅर मिल्यौ अॅवार।
ऐसी विरियां टरि गया, कैसैं बनत सुधार ॥ १२ ॥
जो हूं कहाऊं औरतैं, तौ न मिटै उरझार।
मेरी तौ मोपै बनै, तातै करूं पुकार ॥ १३ ॥
आनॅदघन तुम निरखिकै, हरपत है मन मोर।
दूर भयौ आताप सब, सुनिकै मुखकी घोर ॥ १४ ॥

१ मोक्षरूपी दुलहनका प्राणिग्रहण कराके। २ जबर्दस्ती। ३ बरदान। ४ मुखसे। ५ अवसर—मौका। ६ इस समय।

आन थान अब ना रुचै, मन राच्यौ तुम नाथ ।
रतन चिंतामनि पायकै, गहै काच को हाथ ॥ १५ ॥
चंचल रहत सदैव चित, थक्यौ न काहू ठोर ।
अचल भयौ इकटक अबै, लग्यौ रांवरी ओर ॥ १६ ॥
मन मोह्यौ मेरौ प्रभू, सुन्दर रूप अपार ।
इन्द्र सारिखे थकि रहे, करि करि नैन हजार ॥ १७ ॥
जैसैं भानुप्रतापतैं, तम नासै सब ओर ।
तैसैं तुम निरखत नस्यौ संशयविभ्रम मोर ॥ १८ ॥
धन्य नैन तुम दरस लखि, धनि मस्तक लखि पॉय ।
श्रवन धन्य वानी सुनैं, रसना धनि गुन गाय ॥ १९ ॥
धन्य दिवस धनि या घरी, धन्य भाग मुझ आज ।
जनम सफल अब ही भयौ, वंदत श्रीमहाराज ॥ २० ॥
लखि तुम छवि चितचोरको, चकित थकित चित चोर ।
आनॅद पूरन भरि गयौ, नाहिं चाहि रहि और ॥ २१ ॥
चित चातक आतुर लखै, आनॅदघन तुम ओर
वचनामृत पी तृप्त भौ, तृषा रही नहिं और ॥ २२ ॥
जैसौ वीरज आपमैं, तैसौ कहूँ न और ।
एक ठौर राजत अचल, व्याप रहै सब ठौर ॥ २३ ॥
यौ अद्भुत ज्ञातापनो, लख्यौ आपकी जाग ।
भली बुरी निरखत रहौ, करौ नाहिं कहुं राग ॥ २४ ॥

१ आपकी । २ पराक्रम ।

धरि विसुद्धता भाव निज, दई असाता खोय।
क्षुधा तृषा तुम परिहरी, जैसैं करिये मोय ॥ २५ ॥
त्यागि बुद्धि-परजायकूं[1], लखे सर्व समभाय[2]।
राग दोष ततखिन टरयो, राचे सहज सुभाय ॥२६॥
मो[3] ममता वमता भया, समता आतमराम।
अमर अजन्मा होय सिव, जाय लह्या विसराम ॥ २७ ॥
हेत प्रीति सबसौं तज्या, मगन निजातममाहिं।
रोग सोग अब क्यौं बनै, खाना पीना नाहिं ॥ २८ ॥
जागि रहे निज ध्यानमैं, धरि वीरज बलवान।
आवै किमि निद्रा जरा, निरखेदक भगवान ॥ २९ ॥
जातजीवतैं अधिक बल, सुथिर सुखी निजमाहिं।
वस्तु चराचर लखि लई, भय विसमै[4] यौं नाहिं ॥ ३० ॥
तत्त्वारथसरधान धरि, दीना मोह विनास।
मान हान कीना प्रगट, केवलज्ञानप्रकास ॥ ३१ ॥
अतुल सक्ति परगट भई, राजत हैं स्वयमेव।
खेद स्वेद विन थिर भये, सब देवनके देव ॥ ३२ ॥
परिपूरन हौ सब तरह, करना रह्या न काज।
आरत चिन्तातैं रहित, राजत हौ महाराज ॥ ३३ ॥
वीर्ज अनंता धरि रहे, सुख अनंतपरमान।
दरस अनंत प्रमानजुत, भया अनंता ज्ञान ॥ ३४ ॥

१ पर्यायबुद्धिको। २ समभाव—सबको एक भावसे। ३ मोह। ४ विस्मय-आश्चर्य।

अजर अमर अक्षय अनंत, अपरम अबरनबान ।
अरस अरूपी गंधबिन, चिदानंद भगवान ॥ ३५ ॥
कहत थके सुरगुरु गुनी, सो मनसैं किम माय ।
पै उनमें जितने भरे, तितने कहे न जायँ ॥३६॥
अरज गरजकी करत हूं, तारन तरन सु नाथ ।
भवसागरमें डूब रहूं, तारो गहकरि हाथ ॥३७॥
बीती जितो न कहि सकूं, सब भासत है तोय ।
याहीतें बिनती करूं, फेरि न बीतै मोय ॥३८॥
वारण वानर बाघ अहि, अंजन भील चँडार ।
जाबिधि प्रभु सुखिया किया, सो ही मेरी बार ॥३९॥
हूँ अजान जानैं बिना, फिर्यो चतुरगति थान ।
अब चरना सरना लिया, करो कृपा भगवान ॥४०॥
जगजनकी बिनती सुनो, अहो जगतगुरुदेव ।
जौलों हूं जगमें रहूं, तौलों पाऊं सेव ॥४१॥
तुम तो दीनानाथ हो, मैं हूं दीन अनाथ ।
अब तो ढील न कीजिये, भलो मिल गयो साथ ॥४२॥
बारबार बिनती करूं, मनवचतनतैं तोहि ।
परयो रहूं तुम चरनतट, सो बुधि दीजे मोहि ॥४३॥
और नाहिं जाचूं प्रभू, यो वर दीजे मोहि ।
जौलों सिव पहूंचूं नहीं, तौलों सेऊं तोहि ॥४४॥
या संसार असारमें, तुम ही देखे सार ।
और सकल गरैं पकरि, आप निकासनहार ॥४५॥

या भववन अति सघनमैं, मारग दीखै नाहिं।
तुम किरपा ऐसी करी, भास गयौ मनमाहिं ॥४६॥
जे तुम मारगमैं लगे, सुखी भये ते जीव।
जिन मारग लीया नहीं, तिन दुख लीन सदीव ॥४७॥
और सकल स्वारथ-सगे, विनस्वारथ हौ आप।
पाप मिटावत आप हौ, और बढ़ावत पाप ॥४८॥
या अद्भुत समता प्रगट, आपमाहिं भगवान।
निंदक सहजै दुख लहै, वंदक लहै कल्यान ॥४९॥
तुम वानी जानी जिकों, प्रानी ज्ञानी होय।
सुर अरचैं संचै सुभग, कलमष काटैं धोय ॥५०॥
तुम ध्यानी प्रानी भयैं, सबमैं मानी होय।
फुनि ज्ञानी ऐसा बनैं, निरख लेत सब लोय ॥५१॥
तुम दरसक देखै जगत, पूजक पूजैं लोग।
सेवै तिहि सेवैं अमर, मिलैं सुरगके भोग ॥५२॥
ज्यौं पारसतैं मिलत ही, करि ले आप प्रमान।
त्यौं तुम अपने भक्तकौं, करि हौ आप समान ॥५३॥
जैसा भाव करै तिसा, तुमतैं फल मिलि जाय।
जैसा तन निरखै जिसा, सीसामैं दरसाय ॥५४॥
जब अजान जान्यौ नहीं, तब दुख लह्यौ अतीव।
अब जानै मानै हियैं, सुखी भयौ लखि जीव ॥५५॥

१ जिन्होंने। २ पाप। ३ लोक।

ऐसे तो कहन न बनै, मो उर निश्चै आय ।
तातें मोकूं चरनतट, लीजे आप बसाय ॥५६॥
तो सौ और न ना मिल्यौ, धाय थक्यौ चहुं ओर ।
ये मेरैं गाढ़ी गड़ी, तुम ही हो चितचोर ॥५७॥
बहुत बकत डरपत रहूँ, थोरी कही सुनै न ।
तरफत दुखिया दीन लखि, ढीले रहे बनै न ॥५८॥
रटूं रावरो सुजस सुनि, तारन-तरन जिहाज ।
भव बोरत राखें रहे, तोरी मोरी लाज ॥५९॥
डूबत जलधि जिहाज गिरि, तार्यौ नृप श्रीपाल ।
वाही किरपा कीजिये, वोही मेरो हाल ॥६०॥
तोहि छोरिकै आनकूं, नमूं न दीनदयाल ।
जैसें तैसें कीजिये, मेरो तौ प्रतिपाल ॥६१॥
बिन मतलब बहुते अधम, तारि दये स्वयमेव ।
त्यौं मेरो कारज सुगम, कर देवनके देव ॥६२॥
निंदौ भावो जस करौ, नाहीं कछु परवाह ।
लगन लगी जात न तजी, कीजो तुम निरवाह ॥६३॥
तुमें त्यागि और न भजूं, सुनिये दीनदयाल ।
महाराजकी सेव तजि, सेवै कौन कँगाल ॥६४॥
जाछिन तुम मन आ बसे, आनँदघन भगवान ।
दुख दावानल मिट गयौ, कीनों अमृतपान ॥६५॥

---

१ आपका ।

तो लखि उर हरषत रहूं, नाहिं आनकी चाह।
दीखत सर्व समान से, नीच पुरुष नरनाह[1] ॥६६॥
तुममैं मुझमैं भेद यौ, और भेद कछु नाहिं।
तुम तन तजि परब्रह्म भये, हम दुखिया तनमाहिं॥६७॥
जो तुम लखि निजकौं लखै, लच्छन एक समान।
सुथिर बनै त्यागै कुबुधि, सो ह्वै है भगवान ॥६८॥
जो तुमतैं नाहीं मिलै, चलै सुछंद मदवान।
सो जगमैं अविचल भ्रमै, लहै दुखांकी[2] खान ॥६९॥
पार उतारे भविक बहु, देय धर्म उपदेश।
लोकालोक निहारिकै, कीनौं सिव परवेस ॥७०॥
जो जांचै सोई लहै, दाता अतुल अछेव।
इंद नरिंद फनिंद मिलि, करैं तिहारी सेव ॥७१॥
मोह महाजोधा प्रबल, औंधा राखत मोय।
याकौं हरि[3] सूधा करौ, सीस नमाऊं तोय ॥७२॥
मोह-जोरकौं हरत हैं, तुम दरसन तुम वैन।
जैसैं सर सोषन करै, उदय होयकै ऐनैं[4] ॥७३॥
भ्रमत भवार्णवमैं मिले, आप अपूरब मीत।
संसौं[5] नास्या दुख गया, सहजैं भया नचीत[6] ॥७४॥
तुम माता तुम ही पिता, तुम सज्जन सुखदान।
तुम समान या लोकमैं, और नाहिं भगवान ॥७५॥

१ नरनाथ–राजा। २ दुःखोंकी। ३ हरके–नष्ट करके। ४ सूर्य (?)। ५ संशय–शक। ६ निश्चिन्त–बेफिकर।

जोग अजोग लखौ मती, मो व्याकुलके वैन।
करुना करिकैं कीजियौ, जैसैं तैसैं चैन ॥७६॥
मेरी अरजी तनक सी, बहुत गिनौगे नाथ।
अपनौ विरद विचारिकै, बूड़त गहियौ हाथ ॥७७॥
मेरे औगुन जिन गिनौ, मैं औगुनकौ धाम।
पतितउधारक आप हौ, करौ पतितकौ काम ॥७८॥
सुनी नहीं औजूं[1] कहूं, विपति रही है घेर।
औरनिके कारज सरे, ढील कहा मो बेर ॥७९॥
सार्थवाहि विन ज्यौं पथिक, किमि पहुंचै परदेस।
त्यौं तुमतें करि हैं भविक, सिवपुरमैं परवेस ॥८०॥
केवल निर्मलज्ञानमैं, प्रतिबिंबित जग आन।
जनम मरन संकट हरयौ भये आप रतध्यान ॥८१॥
आपमतलवी ताहितैं, कैसैं मतलब होय।
तुम विनमतलब हौ प्रभू, कर हौ मतलब मोय ॥८२॥
कुमति अनादी सँगि लगी, मोह्यौ भोग रचाय।
याकौ कौलौं[2] दुख सहूं, दीजै सुमति जगाय ॥८३॥
भववनमाहीं भरमियौ, मोह नींदमें सोय।
कर्म ठिगौरे[3] ठिगत हैं, क्यौं न जगावौ मोय ॥८४॥
दुख दावानलमैं जलत, घनै कालकौ जीव।
निरखत ही समता मिली, भली सुखांकी सीवँ[4] ॥८५॥

1 अजौं–अभीतक। 2 कब तक। 3 ठग। 4 सीमा–हद्द।

मो[1] ममता दुखदा तिनैं, मानत हूं हितवान ।
मो मनमाहीं उलटि या, सुलटावौ भगवान ॥८६॥
लाभ सर्व साम्राज्यका (?) वेदयता (?) तुम भक्त ।
हित अनहित समझैं नहीं, तातैं भये असक्त ॥८७॥
विनयवान सर्वस लहै, दहै गहै जो गर्व ।
आप आपमैं हौ तदपि, व्याप रहे हौ सर्व ॥८८॥
मैं मोही तुम मोह विन, मैं दोषी तुम सुद्ध[3] ।
धन्य आप मो घट वसे, निरख्यौ नाहिं विरुद्ध ॥८९॥
मैं तौ कृतकृत अब भया, चरन सरन तुम पाय ।
सर्व कामना सिद्ध भई, हर्ष हियै न समाय ॥९०॥
मोहि[2] सतावत मोह जुर, विषम अनादि असाधि ।
वैद अतार हकीम तुम, दूरि करौ या व्याधि ॥९१॥
परिपूरन प्रभु विसरि तुम, नमूं न आन कुठोर ।
ज्यौं त्यौं करि मो तारिये, विनती करूं निहोर ॥९२॥
दीन अधम निरवल रटै, सुनिये अधम उधार ।
मेरे औगुन जिन लखौ, तारौ विरद चितार ॥९३॥
करुनाकर परगट विरद, भूले वनि है नाहिं ।
सुधि लीजै सुध[3] कीजिये, दृष्टि धार मो-माहिं ॥९४॥
एही वर मो दीजिये, जांचूं नहिं कुछ और ।
अनिमिष दृग निरखत रहूं, सान्त छवी चितचोर ॥९५॥

१ मोह । २ मुझको । ३ शुद्ध ।

यादि हियामैं नाम मुख, करौ निरन्तर वास।
जौलौं वसवौ जगतमैं, भरवौ तनमें सॉस ॥९६॥
मैं अजान तुम गुन अनत, नाहीं आवै अंत।
वंदत अंग नमाय वसु, जावजीव-परजंत ॥९७॥
हारि गये हौ नाथ तुम, अधम अनेक उधारि।
धीरैं धीरैं सहजमैं, लीजै मोहि उधारि ॥९८॥
आप पिछान विसुद्ध ह्वै, आपा कह्यौ प्रकास।
आप आपमैं थिर भये, वंदत बुधजन दास ॥९९॥
मन मूरति मंगल वसी, मुख मंगल तुम नाम।
एही मंगल दीजिये, परयौ रहूं तुम धाम ॥१००॥

इति देवानुरागशतक।

## सुभाषितनीति।

अलपथकी फल दे घना, उत्तम पुरुष सुभाय।
दूध झरै तृनकौं चरै, ज्यौं गोकुलकी गाय ॥१॥
जेताका तेता करै, मध्यम नर सनमान।
घटै बढ़ै नहिं रंचहू, धरयौ कोठरै धान ॥२॥
दीजै जेता ना मिलै, जघन पुरुषकी बान।
जैसे फूटै घट धरयौ, मिलै अलप पय थान ॥३॥
भला कियै करि है बुरा, दुर्जन सहज सुभाय।
पय पायैं[1] विष देत है, फंणी[2] महा दुखदाय ॥४॥
सहैं निरादर दुरवचन, मार दण्ड अपमान।
चोर चुगल परदाररत, लोभि लबार अजान ॥५॥
अमर हारि सेवा करैं, मानसकी कहा बात।
जो जन सील संतोषजुत, करै न परकी घात ॥६॥
अगनि चोर भूपति विपति, डरत रहै धनवान।
निर्धन नींद निसंक ले, मानै काकी हान ॥७॥
एक चरन हू नित पढै, तौ काटै अज्ञान।
पनिहारीकी लेजसौं[3], सहज कटै पाषान ॥८॥
पतिव्रता सतपुरुषकी, गाढ़ा धीर सुभाव।
भूख सहै दारिद सहै, करै न हीन उपाव ॥९॥
वैर करौ, वा हित करौ, होत सबलतैं हारि।

१ पिलानेसे। २ सर्प। ३ रस्सीसे।

मीत भयें गौरव घटें, शत्रु भयें दे मारि ॥१०॥
जाकी प्रकृति कठूर अति, मुलकन होय लखै न।
भजै सदा आधीन परि, तजै छुद्रमैं मैन ॥११॥
सिथिल बैन दाडम बिना, ताकी पैठ बनै न।
ज्यौं प्रसिद्ध रितु सरदको, अम्बर नैकु जरै न ॥१२॥
जतनयक्ती नरकौं मिलै, बिना जतन लै आन।
बासन भरि नर पीत हैं, पशु पीवैं सब थान ॥१३॥
झूठी मीठी तनकसी, अधिकी मानै कौन।
अनसरतें बोलौं इसी, ज्यौं आटेंमें नौन ॥१४॥
ज्वारी बिभिचारीनितें, डरै निकसतें गैल।
मालनि ढांकै टोकरा, छूटे लखिकै छैल ॥१५॥
औसर लखिये बोलिये, जथाजोगता बैन।
सावन भादौं बरसतें, सब ही पावैं चैन ॥१६॥
बोलि उठै औसर बिना, ताका रहै न मान।
जैसैं कातिक बरसतें, निंदै सकलैं जहान ॥१७॥
लाज काज खरचै दरब, लाज काज संग्राम।
लाज गयें सरबस गयौ, लाज पुरुषकी माम (?) ॥१८॥
आरंभ्यौ पूरन करै, कह्या वचन निरबाह।
धीर सलज सुन्दर रसें (?), येते गुन नरमांह ॥१९॥

---

१ काम नहीं चल सकता हो, तो। २ "सारे थान" ऐसा भी पाठ है।

उद्यम साहस धीरता, पराक्रमी मतिमान ।
एते गुन जा पुरुषमैं, सो निरभै बलवान ॥२०॥
रोगी भोगी आलसी, वेहमी[1] हठी अज्ञान ।
ये गुन दारिद्वानके, सदा रहत भयवान ॥२१॥
अछती[2] आस विचारिकैं, छती देत छिटकाय ।
अछती मिलवौ हाथ नहिं, तब कोरे रह जाय ॥२२॥
विनय भक्ति कर सबलकी, निबल गोरै[3] सम भाय ।
हितू होय जीना भला, वेर सदा दुखदाय ॥२३॥
नदीतीरको रूखरा[4], करि बिनु अंकुश नार ।
राजा मंत्रीतैं रहित, बिगरत लगै न वार ॥२४॥
महाराज महावृक्षकी, सुखदा सीतल छाय ।
सेवत फल लाभै न तौ, छाया तौ रह जाय ॥२५॥
अति खानेतैं रोग है, अति बोलैं ज्यां[6] मान ।
अति सोयैं धनहानि है, अति मति करौ सँयान ॥२६॥
झूठ कपट कायर अधिक, साहस चंचल अंग ।
गान सलज आरंभनिपुन, तिय न तृपति रतिरंग ॥२७॥
दुगुण छुधा लज चौगुनी, षष्ठ गुनौ विवसाय ।
काम वसु गुनौ नारिकैं, वरन्यौ सहज सुभाय ॥२८॥
पतिच्चितहित अनुगामिनी, सलज सील कुलपाल ।

१ शक्की—सन्देह करनेवाला । २ जो मौजूद नहीं । ३ गायके । ४ वृक्ष । ५ हाथी । ६ जाता है । ७ सुजान ।

या लक्ष्मी जा घर बसै, सो है सदा निहाल ॥२९॥
क्रूर कुरूपा कलहिनी, करकस बैन कठोर ।
ऐसी भृतनि भोगिवो बसिवो नरकनि घोर ॥३०॥
वरज्यै कुलकी बालिका, रूप कुरूप न जोयै ।
रूपी अकुली परणतां, हीन कहै सब कोय ॥३१॥
विपति धीर रन विक्रमी, नृपति क्षमा दयाल ।
कलाकुशल कोविद कवी, न्याय नीति भूपाल ॥३२॥
मांच झूठ भाषै सुहित, हिंसा दयाभिलाख ।
अति आमद अति व्यय करै, ये राजनिकी साख ॥३३॥
सुजन सुखी दुरजन दंडै, करै न्याय धन संच ।
प्रजा पलै पैख ना करै, श्रेष्ठ नृपति गुन पंच ॥३४॥
काना टूंडा पांगुला, वृद्ध क्षयग अंध ।
बेवारिस पालन करै, भूपति रचि परबंध ॥३५॥
कृपनबुद्धि अन्यग्रचित, झूठ कपट अदयाल ।
ऐसा स्वामी सेवतें, कहुं न होय निहाल ॥३६॥
हंकारी व्यसनी हटी, आरसवान अजान ।
भृत्य न ऐसा राखिये, करै मनोरथहान ॥३७॥
नृप चालै ताही चलन, प्रजा चलै वा चाल ।
जा पथ जा गजराज तहँ, जात जूथ गजबाल ॥३८॥

१ देखकर । २ पक्ष । ३ कमी । ४ अहंकारी—घमंडी ।
५ आलसवान । ६ दास-नौकर । ७ वह । ८ समूह ।

सूर सुधीर पराक्रमी, सब वाहनअसवार ।
जुद्धचतुर साहसि मधुर, सेनाधीस उदार ॥३९॥
निरलोभी सांचौ सुघर, निरालसी मति धीर ।
हुकमी उद्यमी चौकसी, भंडारी गंभीर ॥४०॥
निरलोभी सांचौ निडर, सुघ हिसाबकरतार ।
स्वामिकामनिरआलसी, नौमंद्दा (?) हितकार ॥४१॥
दरस परस पृछ करै, निरखै रोग र आय ।
पथ्यापथ्यमैं निपुन चिर, वैद्य चतुर सुखदाय ॥४२॥
शुक्त सौच पाचक मधुर, देश काल वय जोग ।
सूपकार भोजनचतुर, बोलै सत्य मनोग ॥४३॥
मूढ़ दरिद्री आयु लघु, व्यसनी लुब्ध कुरूर ।
नाथिमती (?) नहिं दीजिये, जाका मन मगरूर ॥४४॥
सीख सरलकौं दीजिये, विकट मिलैं दुख होय ।
वये सीख कपिकौं दई, दिया घौंसला खोय ॥४५॥
अपनी पखें नहिं तोरिये, रचि गहिये करि चाहि ।
ज्यौं तंदुल तुस सहित, तुस बिन ऊगं नाहिं ॥४६॥
अति लोलुप आसक्तकैं, विपदा नाहीं दूर ।
मीन मरे कंटक फँसै, दौरि मांस लखि क्रूर ॥४७॥
आवत उठि आदर करे, बोलै मीठे बैन ।
जातैं हिलमिल बैठना, जिय पावै अति चैन ॥४८॥

---

१ आयु-उमर । २ रसोइया । ३ बचानामके पक्षीने ।
४ पक्ष ।

भला बुरा लखिये नहीं, आये अपने द्वार ।
मधुर बोल जस लीजिये, नातंर[1] अजस तयार ॥४९॥
सेय जती कै भूपती, वसि वन कै पुर बीच ।
या विन और प्रकारतें, जीवांतें[2] वर मीचं[3] ॥५०॥
घनौ सुलप आरंभ रचि, चिगै नाहिं चित धीर ।
सिंह उठकैं ना मुरै, करै पराक्रम वीर ॥५१॥
इंद्री पंच सकोचिकैं, देश काल वय पेखि ।
वंकवत[4] हित उद्यम करै, जे हैं चतुर विसेखि ॥५२॥
प्रातः उठि रिपुतें लरै, बांटै बंधुविभाग ।
रमनि रमनमें प्रीति अति, कुरकट[5] ज्यौं अनुराग ॥५३॥
गूढ मईथुन[6] चख चपल, संग्रह सजै निधान ।
अविसासी[7] परमादच्युत, वायस ज्यौं मतिवान ॥५४॥
वहुभ्यासी संतोषजुत, निद्रा स्वलप सचेत ।
रन प्रवीन मन स्वान ज्यौं, चितवत स्वामी हेत॥५५॥
वहै भार ज्यौं आदरयौं, सीत उष्ण क्षत देह ।
सदा संतोषी चतुर नर, ये रासव[8] गुन लेह ॥५६॥
टोटा लाभ संताप मन, घरमैं हीन चरित्र ।
भयौ कदा अपमान निज, भाषैं नाहिं विचित्र[9] ॥५७॥

१ नहीं तो । २ जीनेमे । ३ मृत्यु । ४ बगुलेके समान । ५ कुक्कुट-मुर्गा। ६ मैथुन । ७ अविश्वासी । ८ रासभ-गधा। ९ यहां विचित्रसे विचक्षण—बुद्धिमानका अभिप्राय होगा।

कोविद रहैं संतोषचित, भोजन धन निज दार।
पठन दान तप करनमैं, नाहीं तृपति लगार ॥५८॥
विद्या संग्रह धान धन, करत हार व्योहार।
अपन प्रयोजन साधतैं, त्यागैं लाज सुधार(१) ॥५९॥
दोय विप्रमधि होम पुनि, सुंदर जुग भरतार।
मंत्री नृप मसलत करत, जातैं होत विगार ॥६०॥
वारि अगनि तिय मूढजन, सर्प नृपति रुज[2] देव।
अंत प्रान नासै तुरत, अजतन[3] करते सेव ॥६१॥
गज अंकुश हय चावुका, दुष्ट खड्ग गहि पान।
लकरीतैं शृंगीनकूं[4], वसि राखै बुधिवान ॥६२॥
वसि करि लोभी देय धन, मानीकौं कर जोरि।
मूरख जन विकथा वचन, पंडित सांच निहोरि ॥६३॥
भूपति वसि है अनुग वन, जोवत तन धन नार।
ब्राह्मण वसि है वेदतैं, मिष्टवचन संसार ॥ ६४॥
अधिक सरलता सुखद नहिं, देखो विपिन[5] निहार।
सीधे विरवा[6] कटि गये, बांके खरे हजार ॥६५॥
जो सपूत धनवान जो, पनजुत हो विद्वान।
सब बांधव धनवानके, सरब मीत धनवान ॥६६॥

१ सुधार-यहां सुधी वा बुद्धिमानका मतलब होना चाहिये। २ रोग। ३ अयत्नसे-विना विचारे। ४ सींगवालोको। ५ जंगल। ६ वृक्ष।

नहिं मान कुलरूपको, जगत मान धनवान।
लखि चँडालके विपुल धन, लोक करें सनमान॥६७॥
संपतिके सब ही हितू, विपदामें सब दूर।
सूखो सर पंछी तजें, सेवें जलतें पूर॥६८॥
तजें नारि सुत बंधु जन, दारिद आयें साथि।
फिरि आमद लखि आयकें, मिलि हैं बांथों¹गंथि॥६९॥
संपति साथ बढ़ै बढ़ै, सरत बुधि बल धीर।
ग्रीषम सर सोभा हरें, सोहै बरसत नीर॥७०॥
पटभूषन सोहै सभा, धन दे सोहै नारि।
खेती होय दरिद्रतें (?), सज्जन सो मनुहार (?)॥७१॥
धर्महानि संक्लेश अति, शत्रुविनयकरि होय।
ऐसा धन नहिं लीजिये, भूखे रहिये सोय॥७२॥
धीर सिथिल उद्मी चपल, मूरख सहित गुमान।
दोष धनदके गुन कहैं, निलज सरलचितवान॥७३॥
काम छोरि सौ जीमजे, न्हाजे छोरि हजार।
लाख छोरिकें दान करि, जपिजे वारंवार॥७४॥
गुरु राजा नट भट वनिक, कुटनी गनिका थान।
इनतें माया मति करो, ये मायाकी खान॥७५॥
खोटीसंगति मति करो, पकरो गुरुका हाथ।
करो निरन्तर दान पुनि, लखो अथिर सब साथ॥७६॥

१ आलिंगन करके।

नृप सेवातैं नष्ट दुज, नारि नष्ट बिन सील।
गनिका नष्ट संतोषतैं, भूप नष्ट चित ढील ॥७७॥
नाहीं तपसी मूढ़ मन, नहीं सूर कृतवान।
नहीं सती तिय मद्यपा, फुनि जो गान सुभान ॥७८॥
सुतको जनम विवाहफल, अतिथिदान फल गेह।
जन्म सुफल गुरुतैं पठन, तजिवौ राग सनेह ॥७९॥
जहां तहां तिय ब्याहिये, जहां तहां सुत होय।
एकमात[1] सुत भ्रात बहु, मिलै न दुरलभ सोय ॥८०॥
निज भाई निरगुन भलौ, पर गुनजुत किहि काम।
आंगन तरु निरफल जदपि, छाया राखै धाम ॥८१॥
निसिमें दीपक चंद्रमा, दिनमैं दीपक सूर।
सर्व लोक दीपक धरम, कुल दीपक सुत सूर ॥८२॥
सीख दई सरधै नहीं, करै रैन दिन सोर।
पूत नहीं वह भूत है, महापापफल घोर ॥८३॥
सुसक[2] एक तरु सघनवन, जुरतहिं[3] देत जराय।
त्यौं ही पुत्र पवित्र कुल, कुबुधि कलंक लगाय ॥८४॥
तिसना तुहि प्रनपति करूं, गौरव देत निवार।
प्रभु[4] आय बावनें[5] भये, जाचक बलिके द्वार ॥८५॥
मिष्ट वचन धन दानतैं, सुखी होत है लोक।
सम्यग्ज्ञान प्रमान सुनि, रीझत पंडित थोक ॥८६॥

१ एक माके पेटसे उत्पन्न हुए भाई। २ शुष्क—सूखा। ३ जुड़ते ही। ४ विष्णु भगवान। ५ वामन-ठिगने।

अगनि काठ सरिता उदधि, जीवनंत जमराज।
मृग नैननि कामी पुरुष, तृपति न होत मिजाज॥८७॥
दारिद्रजुत हू महंत जन, करवे लायक काज।
दंतभंग हस्ती जदपि, फोरि करत गिरिराज॥८८॥
दई होत प्रतिकूल जब, उद्यम होत अकाज।
मूस पिटारो काटियो, गयो सरप करि खाज॥८९॥
बाह्य नरम भीतर नरम, सज्जन जनकी बान।
बाह्य नरम भीतर कठिन, बहुत जगतजन जान॥९०॥
चाहै कछु ह्वै जाय कछु, हारे बिबुध विचारि।
होतव्यते हो जाय है, बुद्धि करम अनुसारि॥ ९१॥
जाके सुखमें सुख लहैं, विप्र मित्र कुल भ्रात।
ताहीको जीवो सुफल, पिटभरकी का बात॥९२॥
हार होहिंगे सुभट सब, करि करि थके उपाय।
तिसना खानि अगाध है, क्यों हू भरी न जाय॥९३॥
भोजन गुरुअवसेस जो, ज्ञान वहै बिन पाप।
हित परोख कारज किये, धरमी रहितकलाप॥९४॥
काल जिवावै जीवको, काल करै संहार।
काल सुवाय जगाय है, काल चाल विकराल॥९५॥
काल करा दे मित्रता, काल करा दे रार।
कालखेप पंडित करैं, उलझै निपट गँवार॥९६॥

१ खा गया। २ पंडित। ३ होतव्यसे-होनहारसे। ४ पेट भरनेवाले-पेटार्थू। ५ कलापरहित-बकवादरहित थोड़ा बोलनेवाला।

सांप दर्श दे छिप गया, वैद थके लखि पीर ।
वैरी करतैं छुटि गया, कौन धरि सकै धीर ॥९७॥
वलधंनमैं सिंह न लसैं, ना कागनमैं हंस ।
पंडित लसैं न मूढ़मैं, हयै खरमैं न प्रशंस ॥९८॥
हय गय लोहा काठि पुनि, नारी पुरुप पखान ।
वसन रतन मोतीनमैं, अंतर अधिक विनान ॥९९॥
सत्य दीप वाती क्षमा, सीय तेल संजोय ।
निपट जतनकरि धारिये, प्रतिविंवित सव होय॥१००।
परधन परतिय ना चितै, संतोपामृत राचि ।
ते सुखिया संसारमैं, तिनकौं भय न कदाचि ॥१०१॥
रंक भूपपदवी लहै, मूरखसुत विद्वान ।
अंधा पावै विपुल धन, गिनै तृना ज्यौं आन ॥२॥
विद्या विपम कुशिष्यकौं, विप कुपथीकौं व्याधि ।
तरुनी विष सम वृद्धकौं, दारिद प्रीति असाधि ॥३॥
सुचि असुची नाहीं गिनै, गिनै न न्याय अन्याय ।
पाप पुन्यकौं ना गिनै, भूसा मिलै सु खाय ॥ ४ ॥
एक मातके सुत भये, एक मते नहिं कोय ।
जैसैं कांटे वेरके, वांके सीधे होय ॥५॥
देखि उठै आदर करै, पूछै हिततैं वात ।
जाना आना ताहिका, नित नवहित सरसात ॥६॥

१ वैलोंमें । २ एक प्रतिमे 'पुत्रविना नहि वंश' पाठ है ।

आदि अलप मधिमें घनी, पद पद बधती जाय।
सरिता ज्यौं सतपुरुषहित, क्यौं हू नाहिं अघाय ॥७॥
गुहि (?) कहना गुहि (?) पूछना, देना लेना रीति।
खाना आप खवावना, षटविधि वधि है प्रीति ॥८॥
विद्या मित्र विदेशमें, धर्म मीत है अंत।
नारि मित्र घरके विषै, व्याधी ओषधि मिंत ॥९॥
नृपहित जो पिरजा अहित, पिरजा हित नृपरोष।
दोऊ सम साधन करै, सो अमात्य निरदोष ॥१०॥
पाय चपल अधिकारकों, शत्रु मित्र परवार।
सोष तोष पोषे विना, ताकों है धिक्कार ॥११॥
निकट रहै सेवा करै, लपटत होत खुस्याल।
दीन हीन लखते नहीं, प्रमदा लता भुआल ॥१२॥
दुष्ट होय परधान जिहिं, तथा नाहिं परधान।
ऐसा भूपति सेवतां, होत आपकी हान ॥१३॥
पराक्रमी कोविद शिलपि, सेवाविद विद्वान।
एते सोहैं भूप घर, नहिं प्रतिपालै आन ॥१४॥
भूप तुष्ट ह्वै करत है, इच्छा पूरन मान।
ताके काज कुलीन हू, करत प्रान कुरवान ॥१५॥
बुद्धि पराक्रम वपु बली, उद्यम साहस धीर।
संका मानै देव हू, ऐसा लखिकै वीर ॥१६॥

१ प्रजा। २ मंत्री। ३ स्त्री। ४ भूपाल-राजा। ५ शिल्पी-कारीगर।

रसना रखि मरजादि तू, भोजन वचन प्रमान।
अति भोगति अति बोलतैं, निहचै होहै हान ॥१७॥
वन वसि फल भखिवौ भलौ, मीनंत भली अजान।
भलौ नहीं बसिवौ तहां, जहां मानकी हान ॥१८॥
जहां कछु प्रापति नहीं, है आदर वा धाम।
थोरे दिन रहिये तहां, सुखी रहैं परिनाम ॥१९॥
उद्यम करवौ तज दियौ, इंद्री रोकी नाहिं।
पंथ चलैं भूखा रहैं, ते दुख पावैं आहिं (?) ॥२०॥
समय देखिकै बोलना, नातरि आछी मौन।
मैना सुख पकरै जगत, बुगला पकरै कौन ॥२१॥
जाका दुरजन क्या करै, छमा हाथ तरवार।
विना तिनांकी भूमिपर, आगि बुझै लगि वार ॥२२॥
बोधत शास्त्र सुबुधि सहित, कुबुधी बोध लहै न।
दीप प्रकास कहा करै, जाके अंधे नैन ॥२३॥
परउपदेस करन निपुन, ते तौ लखे अनेक।
करैं समिक बोलैं समिक, जे हजारमैं एक ॥२४॥
विगड़ै करैं प्रमादतैं, विगड़ै निपट अग्यान।
विगड़ै वास कुवासमैं, सुधरै संग सुजान ॥२५॥
वृद्ध भये नारी मरै, पुत्र हाथ धन होत।
बंधू हाथ भोजन मिलै, जीनैतैं वर मौत ॥२६॥

१ मिहनत-मजदूरी । २ बकपत्ती । ३ तृणाकी । ४ सम्यक्-उत्तम ।

दारू धात पखानमैं, नाहिं विराजे देव ।
देवभाव भायें भला, फलें लाभ स्वयमेव ॥२७॥
तिसना दुखकी खानि है, नंदनवन संतोष ।
हिंसा बंधकी दायिनी, दया दायिनी मोष ॥२८॥
लोभ पापका बाप है, क्रोध क्रूर जमराज ।
माया विषकी वेलरी, मान विषम गिरिराज ॥२९॥
विवसाईतैं दूर क्या, को विदेश विद्वान ।
कहा भार समरत्थको, मिष्ट कहें को आन ॥३०॥
कुलकी सोभा सीलतें, तन सोहै गुनवान ।
पढ़िवो सोहै सिधि भयें, धन सोहै दे दान ॥३१॥
असंतोषि दुज भ्रष्ट है, संतोषी नृप हान ।
निरलज्जा कुलतिय अधम, गनिका सलज अजान ॥३२॥
कहा करैं मूरख चतुर, जो प्रभु हैं प्रतिकूल ।
हरि हलें हारे जतनकरि, जरे जँदू निरमूल ॥३३॥
खेती लखिये प्रात उठि, मध्यान्ह लखि गेह ।
अपरान्हें धन निरखिये, नित सुत लखि करि नेह ॥३४॥
विद्या दयें कुशिष्यकों, करैं सुगुरु अपकार ।
लाख लडावो भानजा, खोसि लेय अधिकार ॥३५॥

---

१ लकडी । २ बंधकी करनेवाली । ३ बल्लरी-बेल । ४ व्यवसायी-उद्यमी । ५ मिष्टवचन बोलनेसे कोई अन्य नहीं रहता—सब अपने हो जाते हैं । ६ बलदेवजी । ७ यादव-वंशी । ८ प्यार करो । ९ छीन लेय ।

ना जानैं कुलशीलके, ना कीजै विसवास।
तात मात जातैं दुखी, ताहि न रखिये पास ॥३६॥
गनिका जोगी भूमिपति, वानर अहि मंजार[1]।
इनतैं राखैं मित्रता, परै प्रान उरझार ॥३७॥
पट पनही बहु खीर गो, ओषधि बीज अहार।
ज्यौं लाभै त्यौं लीजिये, कीजै दुख परिहार ॥३८॥
नृपति निपुन अन्यायमैं, लोभनिपुन परधान[2]।
चाकर चोरीमैं निपुन, क्यौं न प्रजाकी हान ॥३९॥
धन कमाय अन्यायका, वर्ष[3] दश थिरता पाय।
रहै कदा षोड़स बरस, तौ समूल नस जाय ॥४०॥
गाड़ी तरु गो उदधि वन, कंद कूप गिरराज।
दुरविषमैं नो जीवका, जीवो करै इलाज ॥४१॥
जातैं कुल शोभा लहै, सो सपूत वर एक।
भार भरै रोड़ी[4] चरै, गर्दभ भये अनेक ॥४२॥
दूधरहित घंटासहित, गाय मोल क्या पाय।
त्यौं मूरख आटोप[5]करि, नहिं सुघर ह्वै जाय ॥४३॥
कोकिल प्यारी वैनतैं, पतिअनुगामी नार।
नर वरविद्याजुत सुघर, तप वर क्षमाविचार ॥४४॥
दूरि वसत नर दूत[6] गुन, भूपति देत मिलाय।
ढांकि दूरि रखि केतकी, बास प्रगट ह्वै जाय ॥४५॥

---

१ मार्जार-बिल्ली। २ प्रधान-मंत्री। ३ वर्ष-साल। ४ घूरेपर। ५ आडम्बर-ठाठ बाट। ६ गुणरूपी दूत।

सुसक साकका असन वर, निरजनवन वर वास ।
दीन-वचन कहियो न वर, जौ लौं तनमें साँस ॥४६॥
एकाक्षरदातार गुरु, जो न गिनै विनज्ञान ।
सो चँडाल भवको लहै, तथा होयगा स्वान ॥४७॥
सुख दुख करता आन हैं, यों कुबुद्धिश्रद्धान ।
करता तेरे कृतकरम, मेटैं क्यों अज्ञान ॥४८॥
सुख दुख विद्या आयु धन, कुल बल वित अधिकार ।
साथ गर्भमें अवतरें, देह धरी जिहि वार ॥४९॥
वन रन रिपु जल अगनि गिरि, रुज निद्रा मद मान ।
इनमें पुन रक्षा करै, नाहीं रक्षक आन ॥५०॥
दुराचारि तिय कलहिनी, किंकर क्रूर कठोर ।
सरप साथ वसिवो सदन, मृत समान दुख घोर ॥५१॥
संपति नरभव ना रहै, रहै दोषगुनवात ।
है ज्यु वनमें वासना, फूल फूलि झर जात ॥५२॥
एक त्यागि कुल राखिये, ग्राम राख कुल तोरि ।
ग्राम त्यागिये राजहित, धर्म राख सब छोरि ॥५३॥
नहिं विद्या नहिं मित्रता, नाहीं धन सनमान ।
नहीं न्याय नहिं लाज भय, तजौ वास ता थान ॥५४॥
किंकर जो कारज करै, बांधव जो दुख साथ ।
नारी जो दारिद सहै, प्रतिपालै सो नाथ ॥५५॥

१ सूखा । २ पुण्य ।

नदी नखी[1] शृंगीनिमैं[2], शस्त्रपानि[3] नर नारि।
बालक अर राजान ढिग, वसिये जतन विचारि ॥५६॥
कामीकौं कामिन मिलन, विभवमांहि रुचिदान[4]।
भोजशक्ति भोजन विविध, तप अत्यंत फल जान॥५७॥
किंकर हुकमी सुत विबुध[5], तिय अनुगामिनि जास।
विभव सदन नहिं रोग तन, ये ही सुरगनिवास ॥५८॥
पुत्र वहै पितुभक्त जो, पिता वहै प्रतिपाल।
नारि वहै जो पतिव्रता, मित्र वहै दिल माल ॥५९॥
जो हँसता[6] पानी पियै, चलता खावै खान।
द्वै बतरावत जात जो, सो सठ ढीट अजान ॥६०॥
तेता आरंभ ठानिये, जेता तनमैं जोर।
तेता पाँव पसारिये, जेती लांबी सोर ॥६१॥
बहुते परप्रानन हरैं, बहुते दुखी पुकार।
बहुते परधन तिय हरैं, विरले चलैं विचार ॥६२॥
कर्म धर्म विरले निपुन, विरले धन दातार।
विरले सत बोलैं खरे, विरले परदुखटार ॥६३॥
गिरि गिरि प्रति मानिक नहीं, वन वन चंदन नाहिं।
उँदधि[7] सारिसे साधुजन, ठौर ठौर ना पाहिं ॥६४॥

---

१ नखवाले। २ सींगवाले। ३ हाथमे हथियार रखनेवाला मनुष्य। ४ दान करनेमे रुचि। ५ पंडित। ६ यह "हसन्न जल्पेत्" का अनुवाद ठीक नहीं हुआ, "जो हँसता भाषण करै" ऐसा ठीक होता। ७ समुद्रसरीखे गंभीर।

परघरवास विदेसपथ, मूरख मीत मिलाप ।
जोवनमाहिं दरिद्रता, क्यों न होय संताप ॥६५॥
धाम पराया वस्त्र पर, परसय्या परनारि ।
परघर वसिवो अधम ये, त्यागे विबुध विचारि ॥६६॥
हुन्नर[1] हाथ अनालसी, पढ़िवो, करिवो मीत ।
सील, पंच निधि ये अखय, गये रहो नचीत[2] ॥६७॥
कष्ट समय रनके समय, दुरभिख[3] अरु भय घोर ।
दुरजनकृत उपसर्गमें, बचे विबुध कर जोर ॥६८॥
धरम लहै नहिं दुष्टचित, लोभी जस किम पाय ।
भागहीनको लाभ नहिं, नहिं ओपधि गते-आय[4] ॥६९॥
दुष्ट मिलत ही साधुजन, नहीं दुष्ट ह्वै जाय ।
चंदन तरुको सर्प लगि, विप नहिं देत बनाय ॥७०॥
सोक हरत है बुद्धिको, सोक हरत है धीर ।
सोक हरत है धर्मको, सोक न कीजे वीर ॥७१॥
अस्व सुपत[5] गज मस्त ढिग, नृप भीतर रनवास ।
प्रथम ब्यायली गाय ढिग, गये प्रानका नास ॥७२॥
भूपति विसनी पाहुना, जाचक जड़ जमराज ।
ये परदुख जानें[6] नहीं, कीयो चाहैं काज ॥७३॥

---

१ कलाकौशल्य । २ निश्चिन्त-बेफिकर । ३ दुर्भिक्ष-अकाल । ४ गतायु-जिसकी आयु बाकी न रही हो, उसको । ५ सोता हुआ (?) । ६ देखते नहीं हैं ।

मिनख¹-जनम ले ना किया, धर्म न अर्थ न काम ।
सो कुर्चे² अजके कंठमें, उपजे गये निकाम ॥७४॥
सरता नहिं करता रहौ, अर्थ धर्म अर काम ।
नित तड़का³ द्वै घटि रहा, चितवौ आतमराम ॥७५॥
को स्वामी मम मित्र को, कहा देशमें रीत ।
खरच किता आमद किती, सदा चिंतवौ मीत ॥७६॥
वमन करेतैं कफ मिटै, मरदन मेटै वात ।
स्नान कियेतैं पित मिटै, लंघनतैं जुर जात ॥७७॥
कोढ⁴ मांस घृत जुरविषैं, सूल⁵ द्विदल घो टार ।
दृग-रोगी⁶ मैथुन तजो, नवौ धान अतिसार⁷ ॥७८॥
अनदाता साता विपत, हितदाता गुरुज्ञान ।
आप पिता फुनि धायपति, पंच पिता पहिचान ॥७९॥
गुर्ररानी⁸ नृपकी तिया, बहुरि मित्रकी जोय⁹ ।
पतिनी-मा निजमातजुत, मात पांच विधि होय ॥८०॥
घसन छेद ताड़न तपन, सुवरनकी पहिचान ।
दयासील श्रुत तप गुननि, जान्या जात सुजान ॥८१॥

---

१ मनुष्य जन्म । २ बकरीके गलेके स्तन । ३ सबेरे-दो घड़ी रात रहने पर । ४ कोढ रोगमे मांस खाना । ५ शूल रोगमे दो दालोंवाला अन्न खाना । ६ नेत्ररोगी । ७ अतीसार रोगमे अर्थात् दस्तोकी बीमारीमें नया अन्न । ८ गुरानी-गुरुकी स्त्री । ९ स्त्री ।

जाप होम पूजन क्रिया, वेदतत्त्वश्रद्धान।
करन करावनमैं निपुन, दुजे-पुरोत गुनवान ॥८२॥
भली बुरी चितमैं बसत, निरखत ले उर धार।
सोमवदन वक्ता चतुर, दूत स्वामिहितकार ॥८३॥
याहीतें सुकुलीनता, भूप करैं अधिकार।
आदि मध्य अवसानमैं, करते नाहिं विकार ॥८४॥
दुष्ट तियाको पोषना, मूरखकों समझाय।
वैरीतें कारज परैं, कौन नाहि दुख पाय ॥८५॥
विपताकौं धन राखिये, धन दीजे राखि दार।
आतमहितकों छांडिये, धन दारा परिवार ॥८६॥
दारिदमैं दुरविसनमैं, दुरभिख फुनि रिपुघात।
राजद्वार समसानमैं, साथ रहै सो भ्रात ॥८७॥
सर्प दुष्ट जन दो बुरे, तामैं दुष्ट विसेख।
दुष्ट जतनका लेख नहिं, सर्प जतनका लेख ॥८८॥
नाहीं धन भूषन वसन, पंडित जदपि कुरूप।
सुघर सभामैं यों लसैं, जैसें राजत भूप ॥८९॥
स्नान दान तीरथ किये, केवल पुन्य उपाय।
एक पिताकी भक्तितें, तीन वर्ग मिलि जाय ॥९०॥
जो कुदेवको पूजिकें, चाहै शुभका मेल।
सो बालूको पेलिकें, काढ़्या चाहै तेल ॥९१॥

१ द्विज पुरोहित। २ स्त्री। ३ समशानमें-मुर्दखानेमें।
४ तीन पुरुषार्थ-धर्म, अर्थ, काम। ५ पुण्य।

धिक विधवा भूषन सजै, वृद्ध रसिक धिक होय।
धिक जोगी भोगी रहै, सुत धिक पढ़ै न कोय ॥९२॥
नारी धनि जो सीऊजुत, पति धनि रति निजनार।
नीतिनिपुन जो नृपति धनि, संपति धनि दातार ॥९३॥
रसना रखि मरजाद तू, भोगत बोलत बोल।
बहु भोजन बहु बोलतैं, परिहैं सिरपै धोल ॥९४॥
जो चाहौ अपना भला, तौ न सतावौ कोय।
नृपहूकै दुरसीसतैं, रोग सोग भय होय ॥९५॥
हिंसक जे छुपि बन बसैं, हरि अहि जीव भगान।
(फिरैं) बैल हय गरधबा, गऊ भैंस सुखदान ॥९६॥
वैर प्रीति अबकी करी, परभवमें मिलि जाय।
निबल सबल हैं एकसे, दई करत है न्याय ॥९७॥
संसकार जिनका भला, ऊंचे कुलके पूत।
ते सुनिकैं सुलटैं जलद, जैसं ऊन्याँ सूत ॥९८॥
पहलैं चौकस ना करी, बूड़त बिसनमँझार।
रँग मजीठ छूटै नहीं, कीये जतन हजार ॥९९॥
जे दुरबलको पोषि हैं, दुखतैं देत बचाय।
तातैं नृप घर जनम ले, सीधी संपति पाय ॥२००॥

इति सुभाषितनीति।

---

१ कुछ भी। २ थप्पड़। ३ बुरा आशीर्वाद-शाप। ४ सिंह। ५ गधा। ६ विधाता या कर्म। ७ नटाईपर चढ़ाया हुआ साफ सूत।

## उपदेशाधिकार।

ध्यावै सो पावै सही, कहत बाल गोपाल।
बनिया देत कपर्दिका, नरपति करै निहाल ॥१॥
उलझे सुलझिर सुध भये, त्यौं तू उलझ्यौ मान।
सुलझनिकौ साधन करै, तौ पहुंचै निजथान ॥२॥
लखत सुनत सूंघत चखत, इंद्री त्रिपत न होय।
मन रोकैं इंद्री रुकैं, ब्रह्म परापति होय ॥३॥
तृष्णा मिटै संतोषतैं, सेयें अति बढ़ि जाय।
तृन डारें आग न बुझै, तृनारहित बुझ जाय ॥४॥
चाहि करै सो ना मिलै, चाहि समान न पाप।
चाहि रखैं चाकरि करै, चाहि विना प्रभु आप ॥५॥
पाप जान पर-पीड़बौ, पुन्य जान उपगार।
पाप बुरो पुंन है भलो, कीजे राखि विचार ॥६॥
पाप अलप पुन है अधिक, ऐसो आरँभ ठानि।
ज्यौं विचार विणजैं सुधर, लाभ बहुत तुछ हानि ॥७॥
विपति परैं सोच न करौ, कीजे जतन विचार।
सोच कियेतैं होत है, तन धन धर्म बिगार ॥८॥
सोच कियैं चंकित रहै, जात पराक्रम भूल।
प्रबल होत वैरी निरखि, करि डारैं निरमूल ॥९॥

---

१ कौड़ी। २ सुलझ करके। ३ शुद्ध। ४ पुण्य।
५ व्यापार करे। ६ अभिष्ट।

देश काल वय देखिकैं, करि है वैद इलाज।
त्यौं गेही[1] घर वसि करैं, धर्म कर्मका काज ॥१०॥
प्रथम धरम पीछैं अरथ, बहुरि कामकौं सेय।
अन्त मोक्ष साधै सुधी, सो अविचल सुख लेय ॥११॥
धर्म मोक्षको भूलिकैं, कारज करि है कोय।
सो परभव विपदा लहै, या भव निंदक[2] होय ॥१२॥
सक्ति समाँलिर[3] कीजिये, दान धर्म कुल काज।
जस पावै मतलब सधै, सुखिया रहै मिजाज ॥१३॥
बिना विचारे सक्तिके, करै न कारज होय।
थाह विना ज्यौं नदिनिमैं, परै सु बूड़ै सोय ॥१४॥
अलभ मिल्यौ ना लीजिये, लये होत वेहाल।
वनमैं चावरकौं चुगैं, वँधे परेवा जाल[4] ॥१५॥
जैसी संगति कीजिये, तैसा है परिनाम।
तीर गहैं ताकै[5] तुरत, मालातैं ले नाम ॥१६॥
जनम अनेक कुसंगवस, लीनैं होय खराब।

१ गृहस्थी। २ निन्द्य—बदनाम। ३ सँभाल करके अर्थात् जितनी शक्ति हो, उतना। ४ एक व्याधा जंगलमे चावल फैला कर और उसपर जाल विछाकर छुप रहा था, चावलको देख कबूतर (परेवा) चुगनेके लिये आ बैठे, और उस जालमें फँस गये। इसकी कथा हितोपदेशमे है। ५ ताकता है, निशाना साधता है।

अब मतसंगतिके कियें, है शिवपथका लाभ ॥१७॥
नीति तजैं नहिं सतपुरुष, जो धन मिलैं करोर।
कुल तिय बनैं न कंचनी[1], भुगतैं विपदा घोर ॥१८॥
नीति धरैं निरभै सुखी, जगजन करैं सराहैं[2]।
भंडै जनम अनीतितैं[3], दंड लेत नरनाँह[4] ॥१९॥
नीतिवान नीति न तजैं, सहैं भूख तिसैं[5] त्रास।
ज्यों हंसा मुक्ता विना, वनसर करैं निवास ॥२०॥
लखि अनीति सुतकौं तजैं, फिरैं लोकमें हीन।
मुसलमान हिंदू सरव, लखे नीति आधीन ॥२१॥
जे बिगरे ते स्वादतैं, तजें स्वाद सुख होय।
मीन परेवा मकर हरि, पकरि लेत हर कोय ॥२२॥
स्वाद लखैं रोग न मिटैं, कीयें कुपथ अकाज।
तातैं कुटकी[6] पीजिये, खाँजे[7] लूखा नाज ॥२३॥
अमृत ऊनोदर[8] असन, विष सम खान अघाय[9]।
नहैं पुष्ट तन बल करैं, यातैं रोग बढाय ॥२४॥
भूखरोगमंटन असन, वसन हरनकौं सीत।

१ रंडी–वेश्या। २ प्रशंसा। ३ बेइज्जत होता है। ४ नरनाथ–राजा। ५ प्यास। ६ एक कडुवी दवाई। ७ खाइये। ८ कम भोजन करना—कुछ खाली पेट रहना। ९ खूब अघाकर खा लेना।

अति विनौन नहिं कीजिये, मिलै सो लीजे मीत ॥२५॥
होनी प्रापति सो मिलै, तामैं फेर न सार।
तिसना किये कलेस है, सुखी सँतोषविचार ॥२६॥
किते द्यौस भोगत भये, क्यौं हू त्रपत न पाय।
त्रिपत होत संतोषसौं, पुन्य बढै अघ जाय ॥२७॥
पंडित मूरख दो जनैं, भोगत भोग समान।
पंडित समवृति ममत विन, मूरख हरख अमौन ॥२८॥
सूत्र बांचि उपदेश सुनि, तजै न आप कषाय।
जान पूछि कूवै परैं, तिनसौं कहा बसाय ॥२९॥
विनैसमुझे ते समझसी, समझे समझैं नाहिं।
काचे घट माटी लगै, पाके लागै नाहिं ॥३०॥
रुचितैं सीखैं ज्ञान है, रुचि विन ज्ञान न होय।
सूधा घट बरसत भरै, औंधा भरै न कोय ॥३१॥
सांच कहै दूषन मिटै, नातर दोष न जाय।
ज्यौंकी त्यौं रोगी कहै, ताकौ बनै उपाय ॥३२॥
करना जो कहना नहीं, पूछै मारग आन।
नीसाना कैसै मरै, ताँकै आन ही थान ॥३३॥
औरनकौं बहकात है, करै न ज्ञान प्रकास।
गाडर आनी ऊनकौं, बांधी चरै कपास ॥३४॥

१ विज्ञान—ज्यादा विचार करना। २ अप्रमाण—बहुत।
३ बेसमझ। ४ देखे। ५ भेड़।

विन परिख्यां संयों कहैं, मूढ न ज्ञान गहाय।
अंधा बांटै जेवरी, सगरी बछरा खाय ॥३५॥
बोलेतैं जानै परैं, मूरख विद्यावान।
कांसी रूपेकी प्रगट, बाजें होत पिछान ॥३६॥
ऊंचे कुलके सुत पढ़ैं, पढ़ै न मूढ गमार।
घुग्घूसल तो क्यों हु न भनै, मैना भनै अपार ॥३७॥
मारग अर भोजन उदर, धन विद्या उरमाहिं।
सनै सनै ही आत हैं, इकठा आवत नाहिं ॥ ३८ ॥
नित प्रति कुछ दीया किया, काटै पाप पहार।
किसत मांहि देवो किये, उतरै करज अपार ॥३९॥
वृद्ध भये हु ना धरैं, क्यों विराग मनमाहिं।
जे बहते कैमें बचैं, लकडी गहते नाहिं ॥४०॥
विन कलमष निरभै जिके, ते तिरजै हैं तीर।
पोलो घट ऊंधो सदा, क्यों करि बूडै नीर ॥४१॥
दुर्जन सज्जन होत नहिं, गयां तीरथवास।
मेलो क्यो न कपूरमें, हींग न होय सुवास ॥४२॥
मुखतैं जाप कियो नहीं, कियो न करतैं दान।
सदा भार बहते फिरैं, ते नर पशू समान ॥४३॥
स्वामि काममें टरि गये, पायो हक भरपूर।
आगें क्या कहि छूटसी, पूछैं आप हुजूर ॥४४॥

१ परखे विना। २ पाठ–सवक। ३ एक प्रकारका पक्षी।
४ शनैः शनैः, धीरे-धीरे।

करि संचित कोरो रहै, मूरख विलसि न खाय।
माखी कर मींड़त रहै, सहद[1] भील ले जाय॥४५॥
कर न काहुसों वैर हित, होगा पाप संताप।
स्वतै बनी लखिबौ करौ, करिबौकर प्रभु-जाप॥४६॥
विविधि बनत आजीविका, विविधि नीतिजुत भोग।
तजकै लगैं अनीतिमैं, मुकर अधरमी लोग॥४७॥
केवल लाग्या लोभमैं, धर्मलोकगति भूल।
या भव परभव तासका, हो है खोटी मूल॥४८॥
उद्यम काज इसा करैं, साधैं लोक सुधर्म।
ते सुख पावैं जगतमैं, काटैं पिछले कर्म॥४९॥
पर औगुन मुख ना कहैं, पोषैं परके प्रान।
विपतामैं धीरज भजैं, ये लच्छन विद्वान॥५०॥
जो मुख आवै सो कहै, हित अनहित न पिछान।
विपति दुखी संपति सुखी, निलज मूढ सो जान॥५१॥
धीर तजत कायर कहैं, धीर धरैतैं वीर।
धीरे जानै हित अहित, धीरज गुन गंभीर॥५२॥
खिन हँसिबौ, खिन रूसिबौ, चित्त चपल थिर नाहिं।
ताका मीठा बोलना, भयकारी मनमाहिं॥५३॥
विना दई सौगंन[2] करै, हँसि बोलनकी बान।
सावधान तासौं रहौ, झूठ कपटकी खान॥५४॥
जाका चित आतुर अधिक, सडर सिथिल मुख बोल।

१ शहद-मधु। २ कसम।

ताका भाख्या सांच नहिं, झूठा करै है कोलै ॥५५॥
लोकरीतिको छांड़िकै, चालत है विपरीति।
धरम सीख तासौं कहै, अधिकी करै अनीति ॥५६॥
जो मनमुख थिर है सुनै, ताको दीजै सीख।
विनयरहित धंभा (?) सहित, मांगे देय न भीख ॥५७॥
पहले कियां सो अब लियां, भोग रोग उपभोग।
अब करनी ऐसी करो, जो परभवके जोग ॥५८॥
जो कर हो सो पाय हो, बात तिहारे हाथ।
विकल्प तजि सदबुध करौ, करतब तजो न साथ॥५९॥
ओड़ि मुहर लाभ न पल, सो मति वृथा गमाय।
करि कमाय आजीविका, कै प्रभुका गुन गाय ॥६०॥
धरम राखतैं रहत हैं, प्रान थान धन मान।
धरम गमन गम जात हैं, मान थान धन प्रान ॥६१॥
धर्म हरन अपना मरन, गिनै न धनहित जोय।
यौं नहिं जानै मूढ़ जन, मरै भोगि है कोय ॥६२॥
चातुर खरचत विन गरै, पूंजी दे न गमाय।
कै सोगं कै पुन करै, चली जात है आय ॥६३॥
भावी रचना फेरि दे, रंगसं करै उदास।
टरयौ मुहूरत राजको, राम भयौ वनवास ॥६४॥
कोटि करो परपंच किन, मिलि है प्रापति-मान।

१ कसम। २ कर्तव्य। ३ पुण्य। ४ आयु-उमर।
५ होनहार, भवितव्य। ६ रंगमें भंग।

संमदर[1] भरचा अपार जल, आवै पात्र प्रमान ॥६५॥
पंडित[2] हू रोगी भये, व्याकुल होत अतीव।
देखो वनमैं विन जतन, कैसैं जीवत जीव ॥६६॥
कहे वचन फेर न फिरैं, मूरखके मन टेक।
अपने कहे सुधार लैं, जिनके हिये विवेक ॥६७॥
लखि अजोगि विचछनैं मुरैं, दुरजन नेकु टरैं न।
हरचौं काठ मोरत मुरैं, सूखौं फटैं मुरैं न ॥६८॥
चिर सीख्यौं सुमरत रहत, तदपि विसर जा सुद्धि।
पंडित मूरख क्या करैं, भावी फेरैं बुद्धि ॥६९॥
सांयर[3] संपति विपतिमैं, राखै धीरज ज्ञान।
कायर व्याकुल धीर तजि, सहैं वचन अपमान ॥७०॥
कहा होत व्याकुल भये, होत न दुखकी हान।
रिपु जीतैं हारैं धरम, फैलैं अजस कहान ॥७१॥
दुखमैं हाय न वोलिये, मनमैं प्रभुको ध्याय।
मिटै असाता मिट गयै, कीजै जोग उपाय ॥७२॥
कर न अगाऊ कलपना, कर न गईकौं याद।
सुख दुख जो वरतत अवै, सोई लीजे साध ॥७३॥
कवहूँ आभूपन वसन, भोजन विविध तयार।
कवहूँ दारिद जौ-असन[4], लीजै ममता धार ॥७४॥
धूप छांह ज्यौं फिरत है, संपति विपति सदीव।
हरष शोक करि फँसत क्यौं, मूढ़ अज्ञानी जीव ॥७५॥

---

१ समुद्र। २ विद्वान। ३ साहसी। ४ जौका भोजन।

असन औषिधी भूखकी, वसन औषधी सीत।
भला बुरा नहिं जोइये, हरजे बाधा मीत ॥७६॥
खाना पीना सोवना, फुनि लघु दीरघ व्याधि।
राव रंककैं एक सी, एती क्रिया असाधि ॥७७॥
वाही बुधि धन जात है, वाही बुधितैं आत।
जिंनस व्याज विनजत बधै, ताही करतैं जात ॥७८॥
पंडित भावों मूढ़ हो, सुखिया मंद कषाय।
मांठो मोटो है बलध, तांती दुबरी गाय ॥७९॥
बंधै भोग कषायतैं, छुटै भक्ति वैराग।
इनमैं जो आछा लगै, ताही मारग लाग ॥८०॥
दुष्ट दुष्टता ना तजै, निंदत है हर कोय।
सुजन सुजनता क्यों तजै, जग जस निजहित होय॥८१॥
दुष्ट भलाई ना करै, किये कोटि उपकार।
सरपन दूध पिआइये, विषहीके दातार ॥८२॥
दुष्ट संग नहिं कीजिये, निश्चय नासैं प्रान।
मिलै ताहि जारै अगनि, भली बुरी न पिछान ॥८३॥
दुष्ट कही सुनि चुप रहो, बोलैं है है हान।
भाटा मारै कीचमैं, छींटे लागै आन ॥८४॥

१ देखिये। २ बाधा मिटालीजिये। ३ लघुशंका-पेशाब। ४ दीर्घशंका-पाखाना। ५ वस्तु-चीज। ६ ठंडा-गरियाल। ७ गरम-तेज। ८ पत्थर।

कंटकका अर दुष्टका, और न बनै उपाय ।
पग पैनहीं[1] तर दाबिये, ना तर खटकत आय ॥८५॥
मन तुरंग चंचल मिल्या, बाग हाथमें राखि ।
जा छिन ही गाफिल रहौ, ता छिन डारै नाखि॥८६॥
मन विकलप ऐते करै, पॅलके[2] गिनै न कोय ।
याके कियें न कीजिये कीजै हित ह्वै जोय ॥८७॥
पौनथकी[3] देवनथकी, मनकी दौर अपार ।
बूड़े जीव अनंत हैं, याकी लागे लार ॥८८॥
मन लागैं अवकास दै, तब करतब बन जाय ।
मन बिन जाप जपै वृथा, काज सिद्ध नांहि थाय ॥८९॥
जैसैं तैसैं जतन करि, जो मन लेत लगाय ।
फुनि जो जो कारज चतुर, करै सु ही बन जाय ॥९०॥
जिनका मन वसिमैं नहीं, चालै न्याय अन्याय ।
ते नर व्याकुल विकल ह्वै, जगत निंदता पाय ॥९१॥
बड़े भागतैं मन रतन, मिल्यौ राखिये पास ।
जहांके तहांके खोलतैं, तन धन होत विनास ॥९२॥
तनतैं मन दीरघ घनौ, लांबौ अर गंभीर ।
तन नासै नासै न मन, लरती बिरियां वीर ॥९३॥
मन माफिक चालै न जब, तब सुतकौं तज देत ।
मन साधन करता निरखि, करत आनतैं हेत ॥९४॥

---

१ जूता । २ पलभरके विकल्पोंको कोई गिन नहीं सकता । ३ हवासे ।

तनकी दौर प्रमानतैं, मनकी दौर अपार।
मन बढ़करि घटि जात है, घटै न तनविस्तार ॥९५॥
मनकी गति को कहि सकै, सब जानै भगवान।
जिन थाको वसि कर लयौ, ते पहुंचे शिवथान ॥९६॥
परका मन मैला निरखि, मन बन जाता सेर।
जब मन मांगै आनतैं, तब मनका है सेर ॥९७॥
जब मन लागै मोक्षमें, तब तन देत सुकात।
जब मन निरभै सुख गहै, तब फूलै सब गात ॥९८॥
गति गतिमें मरते फिरे, मनमें गया न फेर।
फेर मिटैतैं मनतना, मरै न दूजी वेर ॥९९॥
जिनका मन आतुर भया, ते भूपति नहिं रंक।
जिनका मन संतोपमें, ते नर इंद्र निसंक ॥४००॥
जंत्र मंत्र औंपधि हरैं, तनकी व्याधि अनेक।
मनकी बाधा सब हरै, गुरुका दिया विवेक ॥१॥
वही ध्यान वह जाप व्रत, वही ज्ञान सरधान।
जिन मन अपना वसि किया, तिन सब क्रिया विधान ॥२॥
विन सीखैं वचवौ नहीं, सीखो राख विचार।
झूठ कपटकी ढालकरि, ना कीजे (?) तरवार ॥३॥
जीनैंतैं मरना भला, अपजस सुन्या न जात।
कहनैंतैं सुनना भला, विगर जाय है बात ॥४॥
अपनैं मन आछी लगै, निंदै लोक सयान।
ऐसी परत (?) न कीजियै, तजियै लोभ अग्यान ॥५॥

थोरा ही लेना भला, बुरा न लेना भौंत।
अपजस सुन जीना बुरा, तातैं आछी मौत ॥६॥
स्वामिकाज निज काम ह्वै, सधैं लोक परलोक।
इसा काज बुधजन करौ, जामैं एते थोक ॥७॥
कहा होत व्याकुल भए, व्याकुल विकल कहात।
कोटि जतनतैं ना मिटै, जो हौंनी जा स्यात ॥८॥
जामैं नीत बनी रहै, बन आवै प्रभु नाम।
सो तौ दारिद ही भला, या विन सबैं निकाम ॥९॥
जो निंदातैं ना डरै, खा चुगली धन लेत।
वातैं जग डरता इसा, जैसैं लागा प्रेत ॥१०॥
कुलमरजादाका चलन, कहना हितमित वैन।
छोड़ैं नाहीं सतपुरुष, भोगैं चैन अचैन ॥११॥
दारिद रहै न सासता, संपति रहै न कोय।
खोटा काज न कीजिये, करौ उचित है सोय ॥१२॥
मानुषकी रसना बसैं, विष अर अंमृत दोय।
भली कहैं बच जाय है, बुरी कहैं दुख होय ॥१३॥
अनुचित हो है बसि बिना, तामैं रहौ अबोल।
बोलेतैं ज्यौं वारि लगि, सायर उठै कलोल ॥१४॥
तृष्णा कीएं का मिलै, नासै हित निज देह।
सुखी संतोषी सासता, जग जस रहै सनेह ॥१५॥

१ शास्वत-निरन्तर।

मोह कोह दौंकरि तपै, पिवै न समता वारि ।
विष खावै अंमृत तजै, जात धनंतर हारि ॥१६॥
दान धर्म व्योपार रन, कीजे सकति विचार ।
विन विचार चालैं गिरैं, औंड़े खाड़मँझार ॥१७॥
आमद लखि खरचैं अलप, ते सुखिया संसार ।
विन आमद खरचैं घनों, लहैं गार अर मार ॥१८॥
लाख लाज विन लाँख सम, लाजसहित लख लाख ।
भला जीवना लाजजुत, ज्यौं त्यौं लाजहिं राख ॥१९॥
कुशल प्रथम परिपाक लख, पीछैं काज रचात ।
पिछा पाँव उठाय तव, अगली ठौर लखात ॥२०॥
देव मनुप नारक पशू, सवै दुखी करि चाहि ।
विना चाह निरभै सुखी, वीतराग विन नाहिं ॥२१॥
जीवजात सव एकसे, तिनमें इता विनान ।
चाह सहित चहुंगति फिरैं, चाह रहित निरवान ॥२२॥
गुरु ढिग जिन पूछी नहीं, गह्यौ न आप सुभाव ।
सूना घरका पाहुना, ज्यौं आवे त्यौं जाव ॥२३॥

## विद्याप्रशंसा ।

जगजन वंदत भूपती, ताह (?) अधिक विद्वान ।
मान भूपती देश निज, विद्या सारे मान ॥२४॥

---

१ दावासे—अग्निसे । २ धन्वन्तरि वैद्य । ३ गहरे गढ़ेमें । ४ लाख ( चपड़ा ) के समान । ५ भेद—विज्ञान ।

दारिद संपतिमैं सदा, सुखी रहत विद्वान।
आदरतैं लाभै सु लै, सहै नाहिं अपमान ॥२५॥
या भव जस परभव सुखी, निर्भै रहै सदीव।
पुन्य बढ़ावै अघ हरै, विद्या पढ़िया जीव ॥२६॥
राज चोर डरपै धनी, धन खरचत घट जाय।
विद्या देते मान बढ़ै, नरपति वंदै पाय ॥२७॥
दरववान डरपत रहै, ना बैठे जा थान।
भूपसभा चतुरनविषै, अति उद्धत विद्वान ॥२८॥
च्यारि गतिनमैं मनुषकौं, पढ़िवेकौ अधिकार।
मनुष जनम धरि ना पढ़ै, ताकौं अतिधिक्कार ॥२९॥
पुस्तक गुरु थिरता लगन, मिलै सुथान सहाय।
तब विद्या पढ़िवो बनै, मानुष गति परजाय ॥३०॥
जो पढि करै न आचरन, नाहिं करै सरधान।
ताकौ भणिवौ बोलिवौ, काग बचन परमान ॥३१॥
रिपु समान पितु मातु जो, पुत्र पढ़ावै[1] नाहिं।
सोभा पावै नाहिं सो, राजसभाके माहिं ॥३२॥
अलप असन निद्रा अलप, ख्याल न देखै कोइ।
आलस तजि घोखत रहै, विद्यारथि सुत सोइ ॥३३॥
पांचथकी सोलह बरस, पठन समय यौं जान।
तामैं लाड़ न कीजिये, फुनि सुत मित्रै[2] समान ॥३४॥

१ पढ़ना। २ सोलह बरससे अधिक उमरके पुत्रको मित्रके समान मानना चाहिये।

तजिये गहिनेको वसन, विद्या पढ़ते ज्ञान।
ईं सरधा जब आचरन, इंद्र नमैं तब आन ॥३५॥
धनतें कलमष ना कटै, काटै विद्या ज्ञान।
ज्ञान विना धन क्लेशकर, ज्ञान एक सुखखान ॥३६॥
जो सुख चाहै जीवको, तौ बुधजन या मान।
ज्यौं त्यौं सर पच लीजिये, गुरतैं साचा ज्ञान ॥३७॥
सींग पूंछ विन बैल है, मानुष विना विवेक।
भख्य अभख समझै नहीं, भगिनी भामिनी एक ॥३८॥

मित्रता और संगति।

जौलौं तू संसारमैं, तौलौं मीत रखाय।
सलौ लियें विन मित्रकी, कारज बीगर जाय ॥३९॥
नीति अनीति गनै नहीं, दारिद संपतिमाहिं।
मीत सला ले चाल है, तिनका अपजस नाहिं ॥४०॥
मीत अनीत बचायकै, देहै विसन छुड़ाइ।
मीत नहीं वह दुष्ट है, जो दे विसन लगाइ ॥४१॥
धन सम कुल सम धरम सम, सम वय मीत बनाय।
तासौं अपनी गोप कहि, लीजैं भरम मिटाय ॥४२॥
औरनतैं कहिये नहीं, मनकी पीडा कोइ।
मिले मीत परकासिये, तब वह देवै खोइ ॥४३॥
खोटेसौं बातैं कियें, खोटा जानै लोय।

---

१ पाप। २ भक्ष्य-खाने योग्य, अभक्ष्य-नहीं खाने योग्य। ३ सलाह।

वेश्याकौ पथ पूछतां, भरम करै हर कोय ॥४४॥
सतसंगतिमें बैठनां, जनम सफल ह्वै जाय।
मैले गैलें जावतां, आवै मैल लगाय ॥४५॥
सतसंगति आदर मिलै, जगजन करैं बखान।
खोटा सँग लखि सब कहैं, याकी निँदां न आन ॥४६॥
येते मीत न कीजिये, जती लबपती बाल।
ज्वारी चोरी तस्करी, अमली अर बेहाल ॥४७॥
मित्रतना विसवास सम, और न जगमें कोय।
जो विसासका घात है, बडे अधरमी लोय ॥४८॥
कठिन मित्रता जोरिये, जोर तोरिये नाहिं।
तोरेतैं दोऊनकै, दोष प्रगट ह्वै जाहिं ॥४९॥
विपत मेटिये मित्रकी, तन धन खरच मिजाज (?)।
कबहूं वांके वखतमैं, कर है तेरो काज ॥५०॥
मुखतैं बोलै मिष्ट जो, उरमैं राखै घात।
मीत नहीं वह दुष्ट है, तुरत त्यागिये भ्रात ॥५१॥
अपनेसौ दुख जानकैं, जे न दुखावैं आन।
ते सदैव सुखिया रहैं, या भाखी भगवान ॥५२॥

जूआ निषेध।

जननी लोभ लबारकी, दारिद दादी जान।
कूरा कलही कामिनी, जुआ विपतिकी खान ॥५३॥

१ खराब रास्तेसे। २ विश्वास। ३ दूत-चुगलखोर। ४ चोर। ५ नशेबाज।

धन नासै नासै धरम, ज्वारी धरै कुध्यान ।
धक्काधूम धर्मा करै, धिग धिग कहै जहान ॥५४॥
ज्वारीकौं जोरू तजै, तजै मात पितु भ्रात ।
द्रव्य हरै बांछै लरै, जोरै बात कुबात ॥५५॥
ज्वारी जाय न राजमैं, करि न सकै व्यापार ।
ज्वारीकी परतीति नहिं, फिरता फिरै गुंवार ॥५६॥
बांधै ज्वारी चोरगन, डोलैं संग कँगाल ।
कबहूं चोरी पकरिकै, धरैं फांसि मार ॥५७॥
असुचि असनकी ग्लानि नहिं, रहै हाल बेहाल ।
तात मरन दुख ना रहै, तजै न जूआख्याल ॥५८॥
कहा गिनति सामान्य जन, पांडव भये ख्वार ।
जूआ खेलत पुरुषकी, क्यौं हू रहै न आब ॥५९॥
जैसो ध्यान चंडालको, तैसा ध्यावे स्वान ।
नीच ऊंच कुलकी तजै, करै होय पिछान ॥६०॥

मांसनिषेध ।

हाड़ मांस मुर्दानके, जाकी कायामाहिं ।
सो तो प्रगट मसान है, कांधा खाया नाहिं ॥६१॥
दूध दही घृत धान फल, सुष्ट मिष्ट वर खान ।
ताकौं तजकै अधम मुख, खोदी माटी आन ॥६२॥
जीव अनंता मांसमें, भाखे श्रीभगवान ।
चाखत काटत मांसकौं, हिंसा होत महान ॥६३॥

१ ख्वार-खराब । २ पानी-इज्जत । ३ श्याल । ४ मांस ।

मांस पुष्ट निज करनकौं, दुष्ट आन-पल खात ।
बुरा करेतैं ह्वै भला, सो कहुं सुनी न बात ॥६४॥
स्यार सिंह राक्षस अधम, तिनका भख है मांस ।
मोक्ष होन लायक मनुष, गहैं न याकी बास ॥६५॥
उत्तम होता मांस तौ, लगता प्रभुके भोग ।
यौं भी या जानी परै, खोटा है संयोग ॥६६॥

## मद्यनिषेध ।

सड़ि उपजैं प्रानी अनंत, मदमैं हिंसा भौत ।
हिंसातैं अघ ऊपजै, अघतैं अति दुख होत ॥६७॥
मदिरा पी मत्ता मलिन, लौटे बीच बजार ।
मुखमैं मूतैं कूकरा, चाटैं बिना विचार ॥६८॥
उज्जल ऊंचे रहनकी, सबही राखत चाय ।
दारू पी रोरी परैं, अचरज नाहिं अघाय ॥६९॥
दारूकी मतवालमैं, गोप बात कह देय ।
पीछैं वाका दुख सहै, नृप सर्वस हर लेय ॥७०॥
मतवाला है बावला, चालै चाल कुचाल ।
जातैं जावै कुगतिमैं, सदा फिरै बेहाल ॥७१॥
मानुष ह्वैकै मद पिये, जानै धरम बलाय ।
आंख मूंदि कूप परै, तासौं कहा बसाय ॥७२॥

---

१ दूसरोंका मांस । २ गंध । ३ सर्वस्व-सारा धन ।

## वेश्यानिषेध ।

चरमकार¹ वेचीगुना, गनिका लीनी मोल ।
ताकों सेवत मूढजन, धर्म कर्म दे खोल ॥७३॥
हीन दीनतें लीन है, सेती² अग मिलाय ।
लेती सरवस संपदा, देती रोग लगाय ॥७४॥
जे गनिका सँग लीन हैं, सर्व तरह ते हीन ।
तिनके करतें खावना, धर्म कर्म कर छीन ॥७५॥
खातां पीतां सोवतां, करतां सब व्योहार ।
गनिका उर वसिवो करें, करतव करें असार ॥७६॥
धन खरचे तांलां रचे, हीन, खीन तज देत ।
विसनीकों³ मन ना मुरे, फिरता फिरे अचेत ॥७७॥
द्विज खत्री कोली वनिक, गनिका चाखत लाल⁴ ।
ताकों सेवत मूढजन, मानत जनम-निहाल⁶ ॥७८॥

## शिकारकी निन्दा ।

जैसे अपने प्रान हैं, तैसे परके जान ।
कैसे हरते दुष्ट जन, विना वैर परप्रान ॥७९॥
निरजन वन घनमें फिरें, भरें भूख भय हान ।
देखत ही घूमत छुरी, निरदइ अधम अजान ॥८०॥
दुष्ट सिंह अहि मारिये, तामें का अपराध ।
प्रान पियारे सबनिकों, याही मोटी बाँध⁷ ॥८१॥

---

१ चमार-मोची । २ सेवन करती है । ३ व्यसनीका । ४ लौटता है । ५ लाला या लार । ६ सफल । ७ बाधा-अड़चन, दोप ।

भलौ भलौ फल लेत है, बुरौ बुरौ फल लेत।
तू निरदह है मारकै, क्यौं ह्वै पापसमेत ॥८२॥
नैकु दोष परकौ किये, बाढै बडौ कलेस।
जे पातकि प्रानलि हरैं, ता ह्वै चुक्यौं असेस ॥८३॥
प्रान पोखना धर्म है, प्रान नासना पाप।
ऐसा परका कीजिये, जिसा सुहावै आप ॥८४॥

चोरीनिन्दा।

प्रान पलत हैं धन रहैं, तातैं तासों प्रीति।
सो जोरी चोरी करै, ता सम कौन अनीति ॥८५॥
लरैं मरैं घर तजि फिरै, धन प्रापतिके हेत।
ऐसेकौं चोरै हरै, पुरुष नहीं वह प्रेत ॥८६॥
धनी लरै नृप सिर हरै, बसै निरंतर घात।
निपरैक है चोर न फिरै, डरै रहै उतपात ॥८७॥
बहु उद्यम धन मिलनका, निज परका हितकार।
सो तजि क्यौं चोरी करै, तामैं विघन अपार ॥८८॥
चोरत डर भोगत डरै, मरै कुगति दुख घोर।
लाभ लिख्यौ सो ना टरै, मूरख क्यौं है चोर ॥८९॥
चिंता चिततैं ना टरै, डरै सुनत ही बात।
प्रापतिका निहचै नहीं, जाग हुए मर जात ॥९०॥
चोर एकतैं सब नगर, डरै जगै सब रैन।
ऐसी और न अधमता, जामैं कहूं न चैन ॥९१॥

१ भूत। २ निडर।

## परस्त्रीसंगनिषेध ।

अपनी परतख देखिकै, जैसा अपनै दर्द ।
तैसा ही परनारिका, दुखी होत है मर्द ॥९२॥
निपट कठिन परतिय मिलन, मिलै न पूरै हौंस ।
लोक लरै नृप दंड करै परै महत पुनि दोस ॥९३॥
ऊंचा पद लोक न गिनैं, करै आबरू दूर ।
औगुन एक कुसीलतैं, नाम होत गुन भूर ॥९४॥
कन्या फुनि परव्याहता, नपरस अपरस जात ।
नारी विभचारी गहै, गखै नाहिं दुर्भांत ॥९५॥
कपट अपट तकिवौ करै, सदा जार मांजार ॥९६॥
भोग करैं नाहीं डरैं, परै पीठ पैजार ॥९६॥
धिक कुसील कुलवानकौं, जासौं डरत जहान ।
बतरावत लागै बैटा, नाहिं रहत कुलकान ॥९७॥
ना सेई नाहीं छुई, रावन पाई बात ।
चली जात निंदा अजौं, जगमैं भई विख्यात ॥९८॥
प्रथम सुभग सोहित सुगम, मध्य वृथा रस स्वाद ।
अंत विरस दुख नरकना, विसन-विवाद अगाद ॥९९॥
विसन लगा जा पुरुषकूं, सो तौ सदा खराब ।
जैसे हीरा ऐबजुत, नाहीं पावै आब ॥५००॥

इति उपदेशाधिकार ।

---

१ इज्जत । २ यार—व्यभिचारी । ३ मार्जार—बिल्ली ।
४ जूते । ५ बट्टा लगता है इज्जतमें । ६ कुलकी लाज । ७ दोषवाला ।

## विरागभावना।

केश पलटि पलटचा वपू[1], ना पलटी मन बॉक।
बुझै न जरती झूंपरी, ते जर चुके निसांक ॥१॥
नित्य आयु तेरी झरै, धन पैले[2] मिलि खॉय।
तू तौ रीता ही रह्या, हाथ झुलाता जाय ॥२॥
अरे जीव भववनविषैं, तेरा कौन सहाय।
काल सिंह पकरै तुझे, तब को लेत बचाय ॥३॥
को है सुत को है तिया, काको धन परिवार।
आके मिले सरायमै, बिछुरेंगे निरधार ॥४॥
तात मात सुत भ्रात सब, चले सु चलना मोहि।
चौसठि बरष जाते रहे, कैसे भूलै तोहि ॥५॥
बहुत गई तुछ सी रही, उसमैं धरौ विचार।
अब तौ भूले इतना, निपट नजीक किनार ॥६॥
झूठा सुत झूठी तिया, है ठगसा परिवार।
खोसि लेत है ज्ञानधन, मीठे बोल उचार ॥७॥
आसी सो जासी सही, रहसी जेते आय।
अपनी गो आया गया, मेरा कौन बसाय ॥८॥
जावौ ये भावौ रहौ, नाहीं तन धन चाय।
मैं तौ आतमरामकै, मगन रहू गुन गाय ॥९॥

---

१ वपु—शरीर। २ दूसरे लोग। ३ आयु—उमर।

जो कुवुद्धितैं वन गये, ते ही लागे लार।
नई कुवुधकरि क्यौं फसू, करता वनिरै अवार ॥१०॥
चींटी मीठा ज्यौं लगैं, परिकरके चहुँओर।
तू या दुखकौं सुख गिनै, याही तुझमैं भोरै ॥११॥
अपनी अपनी आयु ज्यौं, रह हैं तेरे साथ।
तेरे राखे ना रहैं, जो गहि राखै हाथ ॥१२॥
जैसैं पिछले मर गये, तैसैं तेरा काल।
काके कहै नाचिंत है, करता क्यौं न संभाल ॥१३॥
आयु कटत है रातदिन, ज्यौं करौंततैं काठ।
हित अपना जलदी करौ, पड़्या रहैगा ठाठ ॥१४॥
संपति विजुरी मारिसी, जोवन वादर रंग।
कोविदै कैसैं राच है, आयु होत नित भंग ॥१५॥
परी रहैगी संपदा, धरी रहैगी काय।
छलवलकरि क्यौं हु न वचै, काल झपट ले जाय ॥१६॥
वनती देखि वनाय लै, फुनि जिन राख उधार।
"वहते वारि पखार कर" फेरि न लाभै वारि ॥१७॥
विसन भोग भोगत रहे, किया न पुन्य उपाय।
गांठ खाय रीते चले, हटवारेमैं आय ॥१८॥
खावौ खरचौ दान द्यौ, विलसौ मन हरपाय।
संपति नदै-परवाह ज्यौं, राखी नाहिं रहाय ॥१९॥

---

१ वनकरके। २ भोलापन। ३ पंडित-विवेकी। ४ बाजारमें। ५ नदीके प्रवाहके समान।

## विरागभावना।

केश पलटि पलटचा वपू[1], ना पलटी मन बाँक।
बुझै न जरती झूंपरी, ने जर चुके निसांक ॥१॥
नित्य आयु तेरी झरै, धन पैले[2] मिलि खाँय।
तू तौ रीता ही रह्या, हाथ झुलाता जाय ॥२॥
अरे जीव भववनविषैं, तेरा कौन सहाय।
काल सिंह पकरै तुझे, तब को लेत बचाय ॥३॥
को है सुत को है तिया, काको धन परिवार।
आके मिले सरायमैं, बिछुरेंगे निरधार ॥४॥
तात मात सुत भ्रात सब, चले सु चलना मोहि।
चौसठि बरस जाते रहे, कैसे भूलै तोहि ॥५॥
बहुत गई तुछ सी रही, उरमैं धरौ विचार।
अब तौ भूले डूबना, निपट नजीक किनार ॥६॥
झूठा सुत झूठी तिया, है ठगसा परिवार।
खोसि लेत है ज्ञानधन, मीठे बोल उचार ॥७॥
आसी सो जासी सही, रहसी जेते आय[3]।
अपनी गो आया गया, मेरा कौन बसाय ॥८॥
जावौ ये भावौ रहौ, नाहीं तन धन चाय।
मैं तौ आतमरामकै, मगन रहूं गुन गाय ॥९॥

---

१ वपु–शरीर। २ दूसरे लोग। ३ आयु–उमर।

जो कुबुद्धितैं बन गये, ते ही लागे लार।
नई कुबुधकरि क्यौं फसूं, करता बनिरैं अबार ॥१०॥
चोंटी मीठा ज्यों लगैं, परिकाके चहुँओर।
तू या दुखकों सुख गिनैं, याही तुझमें भोरै ॥११॥
अपनी अपनी आयु ज्यों, रह है तेरे साथ।
तेरे राखे ना रहैं, जो गहि राखै हाथ ॥१२॥
जैसें पिछले मर गये, तैसें तेरा काल।
काके कहै नचिंत है, करता क्यों न संभाल ॥१३॥
आयु कटत है रातदिन, ज्यों करोंततैं काठ।
हित अपना जलदी करो, पड़या रहैगा ठाठ ॥१४॥
संपति बिजुरी सारिसी, जोबन बादर रंग।
कोविदै कैसें राच है, आयु होत नित भंग ॥१५॥
परी रहैगी संपदा, धरी रहैगी काय।
छलबलकरि क्यों हु न बचै, काल झपट ले जाय ॥१६॥
बनती देखि बनाय लै, फुनि जिन राखै उधार।
"बहते बारि पखार कर" फेरि न लाभै वारि ॥१७॥
विसन भोग भोगत रहे, किया न पुन्य उपाय।
गांठ खाय रीते चले, हटवारेमें आय ॥१८॥
खावो खरचो दान द्यो, विलसो मन हरषाय।
संपति नद-परवाह ज्यों, राखी नाहिं रहाय ॥१९॥

---

१ बनकरके। २ भोलापन। ३ पंडित-विवेकी। ४ बाजारमें। ५ नदीके प्रवाहके समान।

निसि सूते संपतिसहित, प्रात हो गये रंक।
सदा रहै नहिं एकसी, निभै न काकी बंक ॥२०॥
तुछ स्यानप[1] अति गाफिली, खोई आयु असार।
अब तौ गाफिल मत रहौ, नेड़ो[2] आत करार ॥२१॥
राचौ विरचौ कौनसौं, देखी वस्त समस्त।
प्रगट दिखाई देत है, भानुउदय अर अस्त ॥२२॥
देधारी[3] बचता नहीं, सोच न करिये भ्रात।
तन तौ तजि गे रामसे, रावनकी कहा बात ॥२३॥
आया सो नाहीं रह्या, दशरथ लछमन राम।
तू कैसैं रह जायगा, झूठ पापका धाम ॥२४॥
करना क्या करता कहां, धरता नाहिं विचार।
पूंजी खोई गांठकी, उलटी खाई मार ॥२५॥
धंधा करता फिरत है, करत न अपना काज।
घरकी झुंपरी जरत है, पर घर करत इलाज ॥२६॥
किते द्योस[4] वीते तुमैं, करते क्यौं न विचार।
काल गहैगा आय कर, सुन है कौन पुकार ॥२७॥
जो जीये तो क्या किया, मूए क्या दिया खोय।
लारै लगी अनादिकी, देह तजै नहिं तोय ॥२८॥
तजै देहसौं नेह अर, मानै खोटा संग[5]।

१ स्यानपना—चतुराई। २ नजदीक। ३ देहधारी—जीव। ४ दिवस—दिन। ५ परिग्रह।

नहिं पोषै सोषत रहै, तब तू होय निसंग ॥२९॥
तन तौ कारागार है, सुत परिकर रखवार।
यौं जानै मानै न दुख, मानै हित् गँवार ॥३०॥
या दीरघ संसारमें, मुवौ अनंती बार।
एक बार ज्ञानी मरै, मरै न दूजी बार ॥३१॥
देह तजें मरता न तू, तौ काहेकी हान।
जो मृए तू मरत है, तौ ये जान कल्यान ॥३२॥
जीरन तजि नूतन गहै, परगट रीति जहान।
तैसें तन गहना तजन, बुधजन सुखी न हान ॥३३॥
लेत सुखी देता दुखी, यहै करजकी रीति।
लेत नहीं सो दे कहा, सुख दुख बिना नचीत ॥३४॥
स्वारथ परमारथ बिना, मूरख करत बिगार।
कहा कमाई करत है, गुडी उडावनहार ॥३५॥
सहज मिली लँरि ना गहै, करै विपतके काम।
चौपर रचि खेलें लरै, लेत नहीं सुख राम ॥३६॥
जगमें होरी हो रही, छार उड़त सब ओर।
बाहर गये बचवौ नहीं, बचवौ अपनी ठौर ॥३७॥
जगजनकी विपरीत गति, हरपत होत अकाज।
होरीमें धन दे नचै, बनि भड़ुवा तजि लाज ॥३८॥

---

१ जेलखाना। २ ग्रहण करना। ३ पतंग उड़ानेवाला। ४ लक्ष्मी। ५ बाह्य-बाहिर।

मोमाते सब ही भये, बोलैं बोल कुबोल ।
मिलवौ बसिबौ एक घर, बचबौ ग्हां अबोल ॥३९॥
जगजन कारज करत सब, छलबल झूठ लगाय ।
इमा काज कोविद करैं, जामैं धरम न जाय ॥४०॥
"आंसी सो जासी" सही, टूटे जुर गई प्रीति ।
देखी सुनी न साजती, अथिर जगतकी रीति ॥४१॥
सब परजायनिकौं सदा, लागि रह्यौ संस्कार ।
विना सिखाये करत यौं, मैथुन हॉर निहॉर ॥४२॥

ममता और समता ।

सुनैं निपुन ममताविषैं, कारन और हजार ।
विना सिखाये गुरुनके, होत न ममताधार ॥४३॥
आकुलता ममता तहां, ममता दुखकी नीव ।
समता आकुलता हरैं, तातैं सुखकी सीव ॥४४॥
समता भवद्धिसोसनी, ज्ञानामृतकी धार ।
भवातापकौं हरत है, अद्भुत सुखदातार ॥४५॥
समतातैं चिंता मिटै, भैंटै आतमराम ।
ममतातैं विकलप उठै, हेरै सारा ठाम ॥४६॥
ममताकौ परिकर घनौं, क्रोध कपट मद काम ।
त्यागैं समता एकली, बैठी अपने धाम ॥४७॥

१ मोहमाते—मोहमें मतवाले। २ ज्ञानी। ३ आया है सो जायगा। ४ आहार भोजन। ५ नीहार—पाखाना। ६ परिवार।

ममता काठ अनेकतें, चिता अगनि लगाय ।
जरै अनंताकालकी, ममता नीर बुझाय ॥४८॥
ममता अपनी नारि सग, नित सुख निरभै होय ।
भय कलेसकरनी विपत, ममता परकी जोय ॥४९॥
ममता संग अनादिकी, करै अनंते फैल ।
जब जिय गुरु संगति करै, तब या छांडै गैल ॥५०॥
ममता बेटी पापकी, नरक-सदन ले जाइ ।
धर्मसुता समता तिको, सुरगमुकतिसुखदाइ॥५१॥
ममता समताको करो, निज घटमाहिं पिछान ।
बुरी तजौ आछी भजौ, जो तुम हौ बुधिमान ॥५२॥
जाकी संगति दुख लहौ, ताकी तजौ न गैल ।
तौ तुमकौं कहिये कहा, ज्योंके त्यौं हौ बैल ॥५३॥
पूर्व कमाया सो लिया, कहा कियें होय काम ।
अब करनी ऐसी करौ, परभौ होय सुखधाम ॥५४॥
जैसैं यां तैसैं वहां, बरतत है सब व्याध ।
ज्यौं अब यां साधन करौ, त्यों ही परभव साध ॥५५॥
याही भवमें रति रहे, परभो करौ न याद ।
चाले रीते होयकैं, क्या खावोगे स्वाद ॥५६॥
जौलौं काय कटै नहीं, रहै भूमकी व्याध ।
परमारथ स्वारथतना, तौलों साधन साध ॥५७॥

१ जी।

सरतेमैं करते नहीं, करते रहे विचार ।
'परनिर छोड़ी बापके,' फिर पछतात गवाँर ॥५८॥
अहिनिस प्रानी जगतके, चले जात जमथान ।
सेसा थिरता गहि रहे, ए अचरज अज्ञान ॥५९॥
नागा चलना होयगा, कछू न लागै लार ।
लार लैन का है मता, तौ ठानौ दातार ॥६०॥
नरनारी मोहे गये, कंचन कामिनिमाहिं ।
अविचल सुख तिन ही लिया, जे इनके वस नाहिं ।६१।
मिथ्या रुज नास्यौ नहीं, रह्यो हियामैं वास ।
लीयौ तप द्वादस वरस, किया द्वारिका नास ॥६२॥
कहा होत विद्या पढ़े, विन परतीति विचार ।
अभविसेन संज्ञा लई, कीनौं हीनाचार ॥६३॥
विना पढ़ैं परतीति गहि, राख्यौ गाढ़ अपार ।
याद करंत 'तुष-माष' कौं, उतर गये भवपार ॥६४॥
आपा-पर-सरधान विनु, मधुपिंगल मुनिराय ।
तप खोयौ बोयौ जनम, रोयौ नरकमेंजाय ॥६५॥
कोप्यौ मुनि उपसर्ग सुनि, लोप्यौ नृप पुर देस ।
कीनौं दंडकवन विषम, लीनौं नरकप्रवेस ॥६६॥
सुख भानै भानै धरम, जोवनधनमदअंध ।
माल जानि अहिकौ गहैं, लही विपति मतिअंध ॥६७॥

१ ब्याह करके ।

भोग विसन सुख ख्यालमैं, दई मनुषगति खोइ ।
ज्यौं कपूत खा तात धन, विपता भोगै रोइ ॥६८॥
मुनी थके गेही थके, थाके सुरपति सेस ।
मरन समय नाहीं टरै, हो है वाही देस ॥६९॥
नरक निकसि तिर्यंच ह्वै, पशु ह्वै तिर्जग देव ।
दुर्निवार फिरना सदा, संसारीकी टेव ॥७०॥
रोग सोग जामन मरन, क्षुधा नींद भय प्यास ।
लघु दीरघ बाधा सदा, संसारी दुखवास ॥७१॥
संसृत वस्तु न आन कछु, है ममतासंयुक्त ।
ममता तजि समता लई, ते हैं जीवनमुक्त ॥७२॥
मो-ममता जलतैं प्रबल, तरु अग्यान संसार ।
जनम मरन दुख देत फल, काटौ ज्ञान-कुहार ॥७३॥
मगन रहत संसारमैं, तन धन संपति पाय ।
ते कबहूं बच हैं नहीं, सूते आग लगाय ॥७४॥
जे चेते संसारमैं, सुगुरु वचन सुनि कान ।
ता माफिक साधन करत, ते पहुंचैं शिवथान ॥७५॥
संसारीकों देख दुख, सतगुरु दीनदयाल ।
सीख देत जो मान ले, सो तौ होत खुस्याल ॥७६॥
अति गभीर संसार है, अगम अपारंपार ।
बैठे ज्ञानजिहाजमैं, ते उतरे भवपार ॥७७॥
जे कुमती पीड़ैं हरैं, पर तन धन तिय प्रान ।
लोभ क्रोध मद मोहतैं, ते संसारी जान ॥७८॥

लखि सरूप संसारका, पांडव भए विराग।
रहे सुथिर निज ध्यानमैं, टरे न जरते आग ॥७९॥
पले कहां जनमैं कहां, हनैं घनैं नृपमान।
कृष्ण त्रिखंडी भ्रांत-सर, गए तिसाए प्रान ॥८०॥
दशमुख हारयौ कष्टतैं, सह्यौ सील वनवास।
अगनि निकस दिख्या गही, भई इंद्र तजि आस ॥८१॥
बाल हरयौ सुरकर परयौ, पल्यौ आन जा थान।
प्रदुमन सोलह लाभ ले, मिल्यौ तात रन ठान ॥८२॥
त्यागी पीहर सासरे, डरी गुफाके कौन।
गई माम घर सुतसहित, मिली अंजना पौन[3] ॥८३॥
रानी ठानी कुक्रिया, सारी निसि तजि लाज।
सील सुदर्शन ना तज्यौ, भज्यौ हिये जिनराज ॥८४॥
चुभ्यौ रोम सुकुमार तन, रहे करत वर भोग।
सह्यौ स्याल-उपसर्ग-दुख, प्रथमहिं धारत जोग ॥८५॥
मात तात पांचौं तिया, सब कर चुके विचार।
दिख्या धरकैं सिव वरी, स्वामी जंबुकुमार ॥८६॥
भव षट कीनैं कमठ हठ, सहे दुष्ट उपसर्ग।
पारसप्रभु समता लई, करम काटि अपवर्ग ॥८७॥
सहे देशभूषन मुनी, कुलभूषन मुनिराय।
घोर वीर उपसर्ग सुर, केवलज्ञान उपाय ॥८८॥

१ जगत्कुमारके बाणसे। २ दीक्षा। ३ पवनंजयसे।

सुर गेरे संजयत मुनि, दह विद्याधर मार।
सो सहिकै सिवतिय वरी, फनिंद कियौ उपगार ॥८९॥
गाढ़ गह्यौ गाढ़ै तिर्यौ, कहा साह कहा चोर।
अंजन भया निरंजना, सेठ वचनके जोर ॥९०॥
मारे मुरगे चून रचि, कष्ट लह्यौ भव सात।
राय जसोधर चन्द्रमति, ताकी कथा विख्यात ॥९१॥
सुनके पसु उपदेस मुनि, सुलझे क्यों न पुमान।
नाहरतें भये वीरजिन, गज पारस भगवान ॥९२॥
अगनि जराई सुसर सिर, आप मगन रहि ध्यान।
गजकुमार मुनि करम हरि, भये सिद्ध भगवान ॥९३॥
कोट सह्यौ सागर तर्यौ, कर्यौ भांड़ अजान।
सिरीपाल साहस गह्यौ, जाय लह्यौ निजथान ॥९४॥
गनिकाघर आरूढ़ गिरि, रतनदीप मेरूढ़।
चारुदत्त फुनि मुनि भये, सुकलध्यान आरूढ़ ॥९५॥
जग समान थैली लियौ, रह्यौ अमर घर जाय।
दुष्ट जेयौ नृप मुनि भयौ, जीवंधर सिव थाय ॥९६॥
मंदिर कोट महेसके, फँच दिये सिवकोट।
समंतभद्र उपदेस सुनि, आये जिनमतओट ॥९७॥
सहज सहज त्यागन लगे, धनकुमार संसार।
सालभद्र सुनि सह तज्यौ, दो मुनि हूए लार ॥९८॥

---

१ गाढ़सम्यक्त्व—दृढ़श्रद्धान। २ पुरुष। ३ सागर—समुद्र।
४ जीता—काष्ठांगार दुष्टको हराया।

श्रेणिक नृप संबोधतैं, धर्मरुची मुनिराज ।
त्याग कुध्यान सुध्यान गहि, भये मुक्त करि काज ।
समुद[1] तरचा कन्या वरचा, वहुरि भया अधिराज ।
प्रीतंकर मुनि होइकै, लयौ मुक्तकौ राज ॥६००॥
लव अंकुस सुत राम पति, जनक नृपसे बाप ।
हरन अरनि जरना अगनि, सीता भुगत्या पाप ॥१॥
भर्त्ता अर्जुन पांडवा, हितू कृष्ण महाराज ।
तऊ दुसासन चीर गहे, हरी द्रौपदी लाज ॥२॥
बाल वृद्ध नारी पुरुष, ज्ञानी तजैं न धीर ।
कन्या कुमारि चंदना, भुगत्या दुख गंभीर ॥३॥
साहसतैं टरि ज्या विपति, मैनासुंदरि धीर ।
कोढ़ी वरकौं आदरचौ, कंचन हुवौ सरीर ॥४॥
टरैं घोर उपसर्ग सब, सांचे गाढ़विचार ।
वारिषेन सुकुमार सिर, भई हार तरवार ॥५॥
कहा प्रीति संसारतैं, देखौ खोटी बात ।
पीव जिमाई अहि डसी, मंगी (?) कीनौं घात ॥६॥
नारिनका विसवास नहिं, औगुन प्रगट निहार ।
रानी राची कूबरै, लियौ जसोधर मार ॥७॥
भोज-नारि म्हावत रची, म्हावत गनिका संग ।
गनिका-फल ले नृप दियौ, इसौ जगतकौ रंग ॥८॥

---

१ समुद्र । २ अरण्य—वनवास ।

बरनी जाहि न कर्मगति, भली बुरी है जात।
दोऊ अगरत होत हैं, बीच परेकौं घात ॥९॥
बुरी करै है ज्यो भली, लखौ करमके ठाट।
नम्यौ रोग भाम्यौ जगत, फोरत सिरकौं भाट ॥१०॥
करै और भोगै अवर, अनुचित विधिकी बात।
छेद करै मो भागि ज्यो, पारेसी मर जात ॥११॥
एक करै दुरा सब लहैं, ऐसे विधिके काम।
एक हरत है कटक धन, मारा जावै गाम ॥१२॥
बहुत करैं फल एक ले, ऐसा कर्म अनूप।
करै फौज संग्रामकौं, हारै जीतै भूप ॥१३॥
को जानै को कह सकै, है अचिंत्य गति कर्म।
यातैं सचैं ना छूटैं, छूटै आदरै धर्म ॥१४॥
धर्म सुखांकुर मूल है, पाप दुखांकुर खान।
गुरुआम्नायतैं धर्म गहि, करि आपा पर ज्ञान ॥१५॥
गुरुआम्नाय विन होत नहिं, आपा परका ज्ञान।
ज्ञान विनाकौ न्यायरवो, ज्यों हाथीकौ न्हान ॥१६॥
नींव विना मंदिर नहीं, मूल विना नहिं रोख।
आपा पर सरधा विना, नहीं धर्मका पोख ॥१७॥
सुलभ सुनृपपद देवपद, जनम-मरन-दुखदान।
दुलभ सरधाजुत धरम, अद्भुत सुखकी खान ॥१८॥

१ स्नान, २ रूख-वृक्ष।

जो निज अनुभव होत सुख, ताकी महिमा नाहिं ।
सुरपति नरपति नागपति, राखत ताकी चाहि ॥१९॥
मोह तात है जगतका, संतति देत बढ़ाय ।
आपा-पर-सरधानतैं, हटै घटै मिट जाय ॥२०॥
पंचपरमगुरुभक्ति विन, घटै न मोका जोर ।
प्रथम पूजकै परमगुरु, काज करो फुनि और ॥२१॥
गई आयुको जोइये, कहा कमायौ धर्म ।
गई सुगई अबहू करौ, तो पावौगे शर्म ॥२२॥
आपत आगम परम गुरु, तीन धरमके अंग ।
झूठे सेयैं धर्म नहिं, सांचे सेये रंग ॥२३॥
अपने अपने मतविषै, इष्ट पूज है ठीक ।
ऐसी दृष्टि न कीजिये, कर लीजे तहकीक ॥२४॥
रहनी करनी मुख वचन-परंपरा मिलि जाय ।
दोषरहित सब गुनसहित, सेजे ताके पाय ॥२५॥
दोष अठारातैं रहित, परमौदारिक काय ।
सब ज्ञायक दिवि-धुनिसहित, सो आपत सुखदाय ॥२६॥
आपत-आननका कह्या, परंपरा अविरुद्ध ।
दयासहित हिंसारहित, सो परमागम सिद्ध ॥२७॥
वीतराग विज्ञान-धन, मुनिवर तपी दयाल ।

१ मोहका । २ देखिये । ३ मोक्ष । ४ आप्त-सच्चा देव । ५ सेइये । ६ आप्तके मुखका कहा हुआ ।

परंपरा आगम निपुन, गुरु निर्ग्रंथ विसाल ॥२८॥
सत्रु मित्र लोहा कनक, सुख दुख मानिक कांच ।
लाभ अलाभ समान सब, ऐसे गुरु लखि राच ॥२९॥
मारक उपकारक खरे, पूंछ बात विसेस ।
टोडनको मम हित करे, करै सुगुरु उपदेस ॥३०॥
सुरपति नरपति नागपति, वसुविधि दर्व मिलाय ।
पूंज वसु करमन हरन, आय सुगुरुके पाय ॥३१॥
सत्य क्षमा निरलोभ ब्रह्म, सरल सलज विनमान ।
निरममता त्यागी दमी, धर्म अंग ये जान ॥३२॥
हिंसा अंनृत तसकरी, अब्रह्म परिग्रह पाप ।
दर्से अलप सब त्यागिवो, धरम दोय विधि थाप ॥३३॥
धर्म क्षमादिक अंग दश, धर्म दयामय जान ।
दरसन ज्ञान चरित धरम, धरम तत्त्वसरधान ॥३४॥
इते धरमके अंग सब, इनका फल सिवधाम ।
धर्म सुभाव जु आतमा, धरमी आतमराम ॥३५॥
अधरम फेरत चतुरगति, जनम मरन दुखधाम ।
धरम उद्धरन जगतमे, थापै अविचल ठाम ॥३६॥
गुरुमुख सुन गाढ़ो रह्यो, त्यागो वांयस-मास ।
सो श्रेणिक अब पायसी, तीर्थंकर शिववास ॥३७॥

१ एक देश त्याग और सर्वथा त्याग अर्थात् अणुव्रत और महाव्रत । २ कौएका मांस । ३ पावेंगे ।

सुलट्यौ भील अज्ञान हू, वनमैं लखि मुनिराज ।
अनुक्रम विधिकौं काटकै, भए नेमिजिनराज ॥३८॥

## अनुभवप्रशंसा ।

इंद्र नरिंद फनिंद सव, तीन कालमैं होय ।
एक पलक अनुभौ जितौ, तिनकौ सुख नहिं कोय ॥३९॥
पूछै कैसा ब्रह्म है, केती मिश्री मिष्ट ।
स्वादै सो ही जान है, उपमा मिलै न इष्ट ॥४०॥
अनुभौ-रस चाखे विना, पढवेमैं सुख नाहिं ।
मैथुन सुख जानै न ज्यौं, क्वांरी गीतनमाहिं ॥४१॥
जानै चाख्यौ ब्रह्मसुख, गुरुतैं पूछि विधान ।
कोटि जतनहूके कियैं, सो नहिं राचै आन ॥४२॥
वाह्य-भेष[1] उज्जल किया, पाप रहा मनमाहिं ।
सीसी[2] वाहिर धोवतां, उज्जल होवै नाहिं ॥४३॥
पहिले अंदर सुध करै, पीछैं वाहर धोय ।
तव सीसी उज्जल वनै, जानैं सिगरे लोय ॥४४॥

## गुरुप्रशंसा ।

गुरु विन ज्ञान मिलै नहीं, करौ जतन किन कोय ।
विना सिखाये मिनख[3] तौ, नाहिं तिर सकै तोय[4] ॥४५॥
जो पुस्तक पढ़ि सीख है, गुरुकौं पूछै नाहिं ।
सो सोभा नाहीं लहै, ज्यौं वक हंसामाहिं ॥४६॥

---

१ वाह्यवेष-ऊपरी रूप । २ वोंतल-वाटली । ३ मनुष्य ।
४ पानी ।

गुरनुकूल चालै नहीं, चालै सुतै[1]-सुभाय ।
सो नहिं पावै थानकौं, भववनमैं भरमाय ॥ ४७ ॥
क्लेश मिटै आनँद बढ़ै, लाभै सुगम उपाय ।
गुरुकौं पूछिर[2] चालतां, सहज थान मिल जाय ॥ ४८ ॥
तन मन धन सुख संपदा, गुरुपै डारूं वार ।
भवसमुद्रतें डूबतां, गुरु ही काढ़नहार ॥ ४९ ॥
स्वारथके जग जन हितू, विन स्वारथ तज देत ।
नीच ऊंच निरखैं न गुरु, जीवजाततैं हेत ॥ ५० ॥
व्यौंत परैं हित करत हैं, तात मात सुत भ्रात ।
सदा सर्वदा हित करैं, गुरुके मुखकी बात ॥ ५१ ॥
गुरु समान संसारमैं, मात पिता सुत नाहिं ।
गुरु तौ तारैं सर्वथा, ए बोरैं भवमाहिं ॥ ५२ ॥
गुरु उपदेश लहे बिना, आप कुशल है जात ।
ते अजान क्यौं टारि हैं, करी[3] चतुरकी घात ॥ ५३ ॥
जहां तहां मिलिजात हैं, संपति तिय सुत भ्रात ।
बड़े भागतें अति कठिन, सुगुरु कहीं मिल जात ॥ ५४ ॥
पुस्तक बांची इकगुनी, गुरुमुख गुनी हजार ।
तातैं बड़े तलाशतैं, सुनिजे बचन उचार ॥ ५५ ॥
गुरु बानी अंमृत झरत, पी लीनी छिनमाहिं ।
अमर भया ततखिन सु तौ, फिर दुख पावै नाहिं ॥५६॥

१ स्वतः स्वभाव—अपने आप। २ पूछकरके । ३ चतुर पुरुषोंकी की हुई चोट—आक्षेपको कैसे टालेंगे ?

भली भई नरगति मिली, सुनैं सुगुरुके वैन।
दाह मिट्या उरका अबै, पाय लई चित चैन॥ ५७॥
क्रोध वचन गुरुका जदपि, तदपि सुखांकरि धाम।
जैसैं भानु दुपहरका, सीतलता परिणाम॥ ५८॥
परमारथका गुरु हितू, स्वारथका संसार।
सब मिलि मोह बढ़ात हैं, सुत तिय किंकर यार॥ ५९॥
तीरथ तीरथ क्यौं फिरै, तीरथ तौ घटमाहिं।
जे थिर हुए सो तिर गये, अथिर तिरत हैं नाहिं॥ ६०॥
कौन देत है मनुष भव, कौन देत है राज।
याके पहचानैं विना, झूठा करत इलाज॥ ६१॥
प्रात धर्म फुनि अर्थरुचि, काम करै निसि सेव।
रुचै निरंतर मोक्ष मन, सो मानुप नहिं देव॥ ६२॥
संतोषामृत पान करि, जे हैं समतावान।
तिनके सुख सम लुंधकौं[1], अनंत भाग नहिं जान॥६३॥
लोभ मूल है पापकौ, भोग मूल है व्याधि।
हेतें[2] जु मूल कलेशकौ, तिहूं त्यागि सुख साधि॥ ६४॥
हिंसातैं है पातकी, पातकतैं नरकाय[3]।
नरक निकसिहै पातकी, संतति कठिन मिटाय॥ ६५॥
हिंसककौ बैरी जगत, कोइ न करै सहाय।
मरता निबल गरीब लखि, हर कोइ लेत बचाय॥ ६६॥

१ लोभीको। २ मोह। ३ नरकायु—नरककी थिति।

अपनें भाव विगाड़तें, निहचैं लागत पाप ।
पर अकाज तौं हो न हो, होत कलंकी आप ॥ ६७ ॥
जितौं पाप चितचाहसौं, जीव सताए होय ।
आरंभ उद्यमकों करत, तातें थोरौं जोय ॥ ६८ ॥
ये हिंसाके भेद हैं, चोर चुगल विभिचार ।
क्रोध कपट मद लोभ फुनि, आरँभ असत उचार ॥६९॥
चोर डरैं निद्रा तजैं, करै हैं खोट उपाय ।
नृप मारैं मारैं धनी, परभौ नरकां जाय ॥ ७० ॥
छानैं[1] पर चुगली करैं, उज्जल भेष बनाय ।
ते तौ बुगला सारिखे, पर अकाज करि खाँय ॥ ७१ ॥
लाज धर्म भय ना करैं, कामी कूकर एक ।
भैनं[2] मानजी नीचकुल, इनके नाहिं विवेक ॥ ७२ ॥
नीति अनीति लखैं नहीं, लखै न आपविगार ।
पर जारैं आपन जरैं, क्रोध अगनिकी झार ॥ ७३ ॥
तन मूधे मूधे बचन, मनमें राखैं फेर ।
अगनि ढकी तौं क्या हुआ, जारत करत न वेर ॥ ७४ ॥
कुल व्योहारकों तज दिया, गरबीले मनमाहिं ।
अवसि परैंगे कूप ते, जे मारगमें नाहिं ॥ ७५ ॥
बाहिर चुगि शुँक[3] उड़ गये, ते तौ फिरैं खुस्याल ।
अति लालच भीतर धसे, ते शुक उलझे जाल ॥ ७६ ॥

---

१ छुप करके । २ बहिन । ३ तोते ।

आरँभ विन जीवन नहीं, आरँभमाहीं पाप ।
तातैं अति तजि अलप सो, कीजै विना विलाप ॥ ७७ ॥
असत वैन नहिं बोलिये, तातैं होत बिगार ।
वे असत्य नहिं सत्य है, जातैं ह्वै उपकार ॥ ७८ ॥
क्रोधि लोभि कामी मदी, चार सूझते अंध ।
इनकी संगति छोड़िये, नहिं कीजै सनबंध ॥ ७९ ॥
झूठ जुलम जालिम जबर, जलद जंगमैं जान ।
जक न धरै जगमें अजस, जूआ जहर समान ॥ ८० ॥
जाकौं छीवत चतुर नर, डरैं करैं हैं [1]न्हान ।
इसा मासका ग्रासतैं, क्यौं नहिं करौ गिलान ॥ ८१ ॥
मदिरातैं मदमत्त ह्वै, मदतैं होत अज्ञान ।
ज्ञान विना सुत मातकौं, कहै भामिनी मान ॥ ८२ ॥
गान तान लै मानकैं, हरै ज्ञान धन प्रान ।
सुरापान [2]पलखानकौं, गनिका रचत कुध्यान ॥ ८३ ॥
ति[3]न चावै चावै न धन, नागे कांगे जान ।
नाहक क्यौ मारै इन्हैं, सब जिय आप समान ॥ ८४ ॥
नृप डंडै भंडै जनम, खंडै धर्म रु ज्ञान ।
कुल लाजै भाजैं हितू, विसन दुखांकी खान ॥ ८५ ॥
बड़े सीख बकबौ करैं, विसनी ले न विवेक ।
जैसैं [4]बासन चीकना, बूंद न लागै एक ॥ ८६ ॥

१ स्नान । २ मास खानेको । ३ तृण—घास । ४ बर्तन ।

मार लोभ पुचकारतैं, विसनी तजै न फैल ।
जैसैं टट्टू अटकला, चलैं न सीधी गैल ॥ ८७ ॥
ऊपरले मनतैं करैं, विसनी जन कुलकाज ।
ब्रह्मसुरत भूलैं न ज्यौं, काज करत रिखिराज ॥ ८८ ॥
विसन हलाहलतैं अधिक, क्योंकर सेतै अज्ञान ।
विसन विगाड़ैं दोय भव, जहर हरैं अव प्रान ॥ ८९ ॥
नरभव कारण मुक्तका, चाहत इंद्र फनिंद ।
ताकौं खोवत विसनमैं, सो निंदनमैं निंद ॥ ९० ॥
जैसौ गाढ़ौ विसनमैं, तैसौ ब्रह्मसौं होय ।
जनम जनमके अघ किये, पलमैं नाखैं धोय ॥ ९१ ॥
कीनै पाप पहार से, कोटि जनममैं भूर ।
अपना अनुभव वज्रसम, कर डालैं चकचूर ॥ ९२ ॥
हितकरनी धरनी सुजस, भयहरनी सुखकार ।
तरनी भवदधिकी दया, वरनी पटमत सार ॥ ९३ ॥
दया करत सो तात सम, गुरु नृप भ्रात समान ।
दयारहित जे हिंसकी, हरि अहि अगनि प्रमान ॥ ९४ ॥
पंथ सनातन चालजे, कहजे हितमित वैन ।
अपना इष्ट न छोड़जे सहजे चैन अचैन ॥ ९५ ॥

---

१ अड़नेवाला घोडा । २ ऋषीश्वर । ३ सेवन करते हैं । ४ चलिये । ५ कहिये । ६ छोड़िये । ७ सहिये ।

## कविप्रशस्ति ।

मधि नायक सिरपैंच ज्यौं, जैपुर मधि ढूंढार ।
नृप जयसिंह सुरिंद तहां, पिरजाकौं हितकार ॥ ९६ ॥
कीनैं वुधजन सातसै, सुगम सुभाषित हेर ।
सुनत पढ़त समझैं सरव, हरैं कुबुधिका फेर ॥ ९७ ॥
संवत ठारासै असी, एक वरसतैं घाट ।
जेठ कृष्ण रवि अष्टमी, हूवौ सतसइ पाठ ॥ ९८ ॥
पुन्य हरत रिपुकष्टकौं, पुन्य हरत रुज व्याधि ।
पुन्य करत संसार सुख, पुन्य निरंतर साधि ॥ ९९ ॥
भूख सहौ दारिद सहौ, सहौ लोक अपकार ।
निंदकाम तुम मति करौ, यहै ग्रंथकौ सार ७००
ग्राम नगर गढ़ देशमैं, राजप्रजाके गेह ।
पुन्य धरम होवौ करै, मंगल रहौ अछेह ॥ ७०१ ॥
ना काहूकी प्रेरना, ना काहूकी आस ।
अपनी मति तिखी करन, वरन्यौ वरनविलास ॥ ७०२ ॥

समाप्तोऽयं ग्रन्थः ।

१ जेठ वदी ८ सवत् १८७९ । २ अपमान–तिरस्कार ।